मनोहर सीरीज नं0—30

कसक

लेखक :
श्री लक्ष्मी नारायण लाल

एक

मैंने उसे किसी को प्यार करते हुए देखा।

प्यार !

हाँ सचमुच प्यार। 'पर किससे प्यार कर रहा है' ? मेरे पैर रुक गये। मैं सोचने लगा।

'वह किसी से भी कर रहा है, तुमसे मतलब।' जैसे किसी ने फटकार कर मुझसे कह दिया। बात सीधी थी। मैं सोचता हुआ आगे बढ़ने लगा, 'मनुष्य में प्यार करने की कितनी क्षमता है। उसके प्यार में कितनी तत्परता थी ! उसका सतत चुम्बन . . .शायद आज वह अपने टाइगर को प्यार कर रहा है !

पर इतना प्यार !

मैं आगे नहीं बढ़ पाया। मैंने पोर्टिको से फिर देखा। वह प्यार कर रहा था। मुझे लज्जा आ गई। मैंने आँखें फेर लीं। मैं आगे बढत्र गया। हाँ, तो इन्सान अपने कुत्तों से इतना प्यार कर सकता है। पर मैंने उसे कभी भी ऐसा करते हुए नहीं देखा था।षायद वह टाइगर नहीं था। उसे अपने भुजाओं में कसने की क्या आवष्यकता थी ? उसका टाइगर तो बहुत ही सीधा है। मैं सम्भवतः आगे नहीं बढ़ पाया। घूम कर फिर देखा मैंने, ओर उसे बुरी तरह प्यार करते हुए पाया। भुजाओं में बाँध कर झकझोरते हुए देखा। वह अपने टाइगर से ऐसा क्यों करता भला ? वहषायद कोई और है। पर यह उसका व्यक्तिगत जीवन है, मुझसे इन बातों से क्या मतलब ! वह अपने ड्राइँग रूम के सोफे पर है। और मैं कौन हूँ ? मेरे पैर फिर आगे बढ़े। पर मुझे विष्वास होने लगा, सकता। मैंने भी उसके टाइगर को देखा था। वह कोई अन्य..... है। पर इतना प्यार !. .. मैं रूक गया। घूम कर मैंने अन्तिम बार निस्संकोच दोनों को देखा, खूब जी भर कर। क्षण भर में न जाने कितना देख लिया। अब वह उसे अंक में भर कर प्यार कर रहा था। भुजाओं में जकड़े था। मैं उसे क्यों देखता रहा ? स्वयं इस पर लज्जित था, और अब तक हूँ। फिर भी मैंने उसे देखा। सम्पूर्ण सोफे के विस्तार को देखा। वह युवती थी। दूर से, अप्सरा–सी देख पड़ती थी। वह धीरे–धीरे बाहु–पाष को बटोरता गया तथा क्षण भर में नारी की सम्पूर्ण स्थूलता उसके पाषवृत्त में एक बिन्दु–सी लीन हो गयी। मैं उसे देख नहीं पाया; वह स्वयं सोफे पर सिकुड़ गया था। वह उसके अंक में बँधी एकदम मौन थी। बाहु–परिधि के बाहर, मैंने उसके बिखरे हुए केष–जाल को देखा, अपलक दृष्टि से। मेरा पतन, छिः ! क्या अधिकार था मेरा उसका नग्नतम रूप देखने का ? फिर भी मैंने इस युवती का मुख पहले कभी नहीं देखा था। मैं दूर तक सोच रहा था, पर मेरी आँखें वहीं थी। उसने खूब प्यार किया। बाद को मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो वह उसका रक्त पी रहा है। मुझे अकस्मात दया आने लगी। काष, वह उसका टाइगर ही होता। तब तक पोर्टिको से निकल कर टाइगर ने दुम हिलायी और मेरे पैर को सूंधा। मैंने प्यार से उसे सहलाया। सत्री उसी दषा में सोफे पर पड़ी रही, वह उठ पड़ा। युवती ने उस हालत में भी अपनें हाथों से अपना मुख छिपा लिया था। मुझे न जाने कैसा मालूम होने लगा।

मैं सीधे अपने घर लौट आया। चम्पा, भैया, भाभी, रेखा सभी सो गये थे। मैं भी चुपके से अपने बाहरी कमरे में लेट गया। मेरी आँखों में नींद नहीं थी। मुझे बहुत बुरा लग रहा था, कि मैंने क्यों अपनी नींद गवाँ दी। मैं बेकार उसके बँगले से निकला। यदि निकला भी, तो पर्दे के भीतर से उसके ड्राइग रूम को देखने का क्या अधिकार था मुझे ? मैंने बहुत–कुछ देखा ! हाँ, बहुत आगे बढ़ गया मैं ! संसार न जाने क्या–क्या करता है, मुझ से मतलब ? मुझ में इतना कौतूहल क्यों ? मेरे दिमाग में उस पूरे सोफे का विस्तार भर गया था। मेरा टेबिललैम्प जल रहा था। उसका सम्पूर्ण प्रकाष, षेड के कारण सामने की दीवाल पर पड़ रहा था। उस प्रकाष में न जाने कितने कीड़े बैठे थे। कुछ उड़ भी रहे थे। किनारे पर एक छिपकली सावधानी से उन कीड़ों को निगलती जाती थी। फिर भी कीड़े कम नहीं हो रहे थे। क्या उसका इतना छोटा पेट इतने कीड़ों से नहीं भरा होगा ?...शायद अब वह भी कीड़ों से प्यार कर रही है। क्या जगत का सारा व्यापार प्यार ही है ? मैंने क्षण भर सोचा, 'क्या मैनेजर प्यार कर रहा था ?' न जाने क्या–क्या कर रहा था वह।

मिस्टर घोष ओरियन्टल बैंक के मैनेजर हैं। मैंने उनके बँगले पर कुत्ता टाइगर को छोड़ और किसी को अभी तक नहीं देखा था। सम्भवतः अब उनकी पत्नी आ गयी हैं। पत्नी... पर अभी तो वे अविवाहित ही हैं। रात बीतती जा रही थी। बिजली जल रही थी। छिपकली कीड़ों को निगलती जा रही थी। मेरे मन में प्रष्न उठते जा रहे थे। मैं परेषान हो गया।

और फिर न जाने कब सो गया।

''बाबू जी, उठिये, साढ़े आठ बज रहे हैं।'' चम्पा ने मुझे जगाते हुए कहा। आँख खुलते ही मैंने घड़ी देखी। उसका पूरा डायल मुझे सोफा–सा लगा। उस पर की दोनों सूइयाँ मानो दो विभिन्न मूतियाँ थीं। बड़ी सूई थी मैनेजर की भाँति, तथा छोटी छिपकली–सी प्रतीत हुई इनके बीच मिनट के चिन्ह के स्थान पर वही स्त्री थी, वही कीड़े–मकोड़े थे ! मैं अपनी चारपाई पर उदास बैठा रहा।

''चम्पा ! बाबू को नाष्ता दे आ।'' भाभी के स्वर मेरे कानों में गूंज उठे। मैंने झटपट अपने मुंह में ब्रष दबा लिया। उसे फेरने लगा दाँतों पर।

''बाबू जी, अभी तक आप ब्रष कर रहे हैं !'' चम्पा ने कहा। मैं चुप था। वह टेबिल पर नाष्ता रख कर जाने लगी।

''चम्पा !'' मैंने तौलिये से अपना मुंह पोंछते हुए पुकारा।

''जी बाबू जी, पानी लेने जा रही हूँ।''

वह चली गयी। मैंने धीरे–धीरे नाष्ता करना आरम्भ किया। आज का नाष्ता कैसा था, क्या था, मुझे पता नहीं लगा। पर मैं सब खा गया। चम्पा आयी। पानी रख कर उसने मेरी ओर देखा।

''आज इतनी देर तक आप क्यों सोते रहे ?'' चम्पा ने पूंछा।

मैं क्या उत्तर देता ? चुपचाप पानी पीने लगा।

''इतनी देरी तक आप पहले कभी नहीं सोते थे।''

मैं, चुप था। वह कमरे के बाहर जा रही थी। मैंने धीरे से उसे पुकारा– ''चम्पा !''

वह मेरे सामने आ खड़ी हुई।

''भैया कहाँ हैं ?''

''अपने कमरे में अखबार पढ़ रहे हैं।''

''और भाभी ?''

''स्नान कर रही है।''

''एक बात बताओगी, चम्पा ?'' मैंने गंभीरता से पूछा।

''कौन बात बाबू जी ?''

''मैंनेजर अपनी औरत के साथ रहते हैं ?''

''घोष बाबू ?''

''हाँ, वही।''

''नही ंतो, उनके घर में केवल एक नौकरानी है। कौन जाने बहू जी जानती हों, पूछूं ?''

''नहीं, नहीं, मैंने बैसे ही पूछा था। कल रात मैंने उनके ड्राइंग रूम में एक युवती को देखा है। मैंने समझा...!''

''आप ऐसे ही समझ लेते हैं ! रही होगी कोई औरत !'' कह कर वह खिल–खिला कर हँस पड़ी।

वह चली गयी।

सचमुच मुझे इससे क्या मतलब ? रही होगी कोई औरत ! पर मैं इतना ही जानना चाहता था, कि वह कौन थी ? क्या वह इस समय तक उसी सोफे पर पड़ी होगी ? अब कहाँ होगी ? कौन रही होगी ? यह सोचते–सोचते मैं मैंनेजर के बँगले की ओर चला। वहाँ पहुँच कर देखा, उसका ड्राइंग रूम बन्द था। बाहर नौकर बैठे थे। गैरेज में उनकी कार खड़ी थी। पोर्टिको में उनका टाइगर हाँफ रहा था। मैंने पिछली रात वाले स्थल का निरीक्षण किया, जहाँ से मैंने खड़े हो कर ऐसी वारदात देखी थी। वहाँ कुछ नहीं था। पक्की भूमि पर मेरे पैरों के निषान तक नहीं थे। मैं लौट आया। फिर भोजन कर के यूनिवर्सिटी चला गया।

\+ \+ \+

अगस्त का महीना था। मेरी एम0 ए0 प्रथम वर्ष की पढ़ाई अभी जोरों पर नहीं थी। अँगरेजी–विभाग के सामने वाले लान में मेरे सहपाठी बैठे थे। हँसी के फव्वारे छूट रहे थे। मिस्टर डेविड के ऊपर बौछारें पडत्र रही थीं। गत शनिवार को 'हाउजी' में उसे सात सौ का 'स्नोवाल' मिला था। सभी उससे पार्टी माँग रहे थे। डेविड भी एक षाहखर्ची था। उसके पास शायद ही अब तक कुछ शेष ही। मैंने डेविड का पक्ष लिया। उसके प्रति सहानुभूति प्रकट की। वह पार्टी देने से इनकार कर रहा था। लोग उसे बेतहाषा बना रहे थे। कुछ देर के बाद हम लोग क्लास में गये। डेविड मेरे साथ बैठा था। क्लास के उपरान्त भी वह मेरे साथ था।

''भाई, आज तुमने मेरी रक्षा कर ली, वरना मेरी साइकिल आज ही बिक जाती।''

''कुछ चाय–पानी करा देते, बस, छुट्टी हो जाती।'' मैंने कहा।

''अपने खर्च से छुट्टी मिले, तब तो।'' वह बोला।

''क्या आज–कल खर्च बहुत बढ़ गया है ?''

''देखना चाहते हो मेरा खर्चा ? तो आज देख लो।''

शाम को डेविड मुझे साथ लेकर चल पड़ा। हम लोग 'काफी हाउस' पहुँचे। काफी का खर्च देखा। उसके साथ मैंने पहली बार 'हाउजी' खेली। चुरूट पिया। वह फिर मुझे स्वीट–मार्ट में लाया। खाने–पीने के बाद वह एक अँगरेजी सिनेमा–हाउस की ओर बढ़ रहा था। रात काफी बीत चुकी थी। मैंने उसे रोक दिया।

''देख चुके ! लेकिन अभी तो मेरे खर्च का आधा भाग पड़ा हुआ है।''

''क्षमा करना मिस्टर डेविड, मुझे देर हो रही है।'' मैंने कहा।

''अच्छा बाकी कल।'' उसने हाथ मिलाते हुए कहा।

मेरा रिक्षा घर की ओर बढ़ रहा था। मेरी भूली हुई स्मृतियाँ फिर सचेत हो गयीं। मैं चौराहे पर पहुँचा। आगे ही मैंनेजर का बँगला था। मैंने रिक्षा वहीं छोड़ दिया। पैदल ही आगे बढ़ा। मैंने ड्राइंग रूम को देखा। वह बन्द था, केवल बाहर से नीला प्रकाष दिखायी पड़ रहा था। षायद आज सब सूना है। मैं सड़क पर कुछ देर तक खड़ा रहा, पर कुछ देख न सका। धीरे–धीरे रेडिंयो की ध्वनि आ रही थी कमरे से। मैं इस सूने में भी बहुत–कुछ देख रहा था। फिर घर की ओर चला। देखा, घर पर सब लोग सो चुके थे। केवल चम्पा अभी तक जाग रही थ। अभी उसे कुछ काम करने को शेष थे। चम्पा ने रेखा को जगाया। वह झुंझलाती हुई मुझे खाना दे कर फिर सो रही। मैं चुप था। चम्पा भी चुप थी।

''चम्पा सब सो गये ?'' मैंने नीरवता भंग की।

''हूँ।'' उसने उत्तर दिया।

''बाबू जी ! मैंनेजर साहब तो अकेले ही रहते हैं, मैंने नौकरानी से पूछा था।'' मानो वह इसी बात को कहने के लिये अभी तक जाग रही थी।

''नहीं चम्पा, मैंने किसी ओर को देखा है !''

''कोई और !'' चम्पा ने आष्चर्य प्रकट किया।

''मैं स्वयं कुछ नहीं सोच पाया।'' मैंने कहा।

''बड़े घर की कौन बात चलाये ! होगी कोई। ऐसे लोगों का घर कभी सूना नहीं रहता।'' उसने कहा।

''सचमुच चम्पा, मेरा भी तो घर सूना नहीं है !'' मैं बोल उठा।

''तो आप छोटे आदमी थोड़े ही हैं !'' कहते वह हँस पड़ी।

''उनकी अपेक्षा तो छोटा ही हूँ।''

''अब मैं बहस नहीं करूँगी, आप ठहरे पढ़े–लिखे और मैं हूँ एक गँवार नौकरानी।''

''नौकरानी नहीं, बल्कि तुम हो 'चम्पा' !'' कह कर मैं मुस्करा उठा।

————————

दो

डेविड मुझे उस दिन के शेष खर्च को दिखाने के लिये 'काफी हाउस' की ओर बढ़ रहा था। मैंने उसे सहसा रोका, क्योंकि उस दिन मैंने उसके नित्य के खर्च का प्रारम्भिक भाग देख लिया था। मैं उसके आगे देखना चाहता था। मैंने उस पर काफी हठ किया, अंत में मेरी विजय हुई। इसके उपरान्त उसका खर्च सिनेमा से आरम्भ हुआ। हम लोग 'बाक्स' में बैठे। खेल आरम्भ होने के पहले मैंने देखा, इस क्लास में अभी केवल हम लोग थे। अर्धान्तर होने पर बिजली के मधुर प्रकाष में मैंने दूसरी ओर मैंनेजर को देखा। उसके साथ आज दो स्त्रियाँ थीं। मुझे उत्सुकता हुई, उनमें उस दिन की स्त्री कौन है ? मेरी दृष्टि ढूंढ़न लगी। मेरी खोज का आधार केवल इतना था, कि मैंने दूर से उस दिन उसे मैंनेजर के अंक में सोफे पर देखा तो था; पर उसे पहचाना नहीं था। दोनों स्त्रियाँ रूपवती थीं। जरूरत से ज्यादा आधुनिक थीं। षिक्षिता भी प्रतीत होती थीं। इसके आगे मैंने निगाह फेर ली। डेविड मेरी चुप्पी पर, उनकी ओर देखने के बहाने 'बोर', 'बोर' कह रहा था। खेल समाप्त हुआ। डेविड के पैर जल्दी–जल्दी ए0 बी0 सी0 रेस्तराँ की ओर बढ़ रहे थे। मैं उसके पीछे था। वह सावधानी से 'प्राइवेट डाइनिंग रूम' में दाखिल हो गया। सामने हिव्स्की, सोडावाटर, बरफ इत्यादि आ गये।

''पियोगे न ?'' उसने कहा।

मैंने हाथ जोड़ कर सिर हिलाया।

वह नाराज हुआ। मैंने क्षमा माँगी। वह थोड़ी देर तक चुप रहा। भरे हुए प्यालों के ऊपरी धरातल को घूर कर देखा। फिर 'अच्छा' कहा। उसमें चेतावनी थी। इसके बाद उसने सावधानी के साथ प्याली खाली कर दी। आखिरी 'सिप' के पहले मैंने उसे देखा, वह पूर्ण रूप से बदल चुका था। पर उसकी चेतना बैसी ही थी। वह शराबी नहीं था। वह फिर आगे बढ़ रहा था। मैं उसकी बगल में था। वह बढ़ता हुआ, सड़क को छोड़ एक बँगले के घेरे में घुस गया। वह निस्संकोच बँगले की ओर बढ़ता जाता था। मैंने उसे पकड़ कर रोका। वह उलटे मुझे भी अपने साथ खींचने लगा। मैंने उसके साथ अपने को ड्राइंग रूम में पाया। यह पूर्ण रूप से योरोपीय षैली में सजा हुआ था। मेरे लिये सब वस्तुयें नयी थीं। मैं बड़ी देर तक डेविड को आष्चर्य से देखता रहा। वह भी चुप था। इसी समय भीतरी दरवाजे का रेषमी परदा एक ओर खिंचा। मैंने देखा, एक युवती हल्के पैरों से चलती हुई सामने के कोच पर सावधानी से बैठ गयी। भीतर बँगले में और लोग अँगरेजी में कुछ बातचीत कर रहे थे। मैं बिल्कुल चुप था। डेविड ने मेरा अँगरेजी ढंग पर परिचय कराया उस युवती से।

युवती का नाम था लिली। उसने बड़े षिष्टाचार के साथ मेरा स्वागत किया। डेविड का यहाँ क्या खर्च था, मैं इसी को देखना चाहता था। लिली ने प्यार से डेविड का चुम्बन किया। वह उसके साथ एकदम सट कर बैठी थी। दोनों

घुल–मिल कर हँस रहे थे। मैं भी डरते–डरते उनकी बातों का पूरक बन जाता था। मैं थोड़ी देर के लिये अपने को भूल गया। मुझे अनुभव हो रहा था, मैं इँग्लैण्ड के किसी परिवार में हूँ। लिली का नाम जितना व्यंज्जनात्मक था, उतनी ही अभिव्यज्जनात्मक शाक्ति उसके रूप में, वर्ण में, नाज में, अणु–अणु में थी। मैंने अपने सामने देखा, कि डेविड का व्यक्तित्व लिली में खो गया था। वह बिन्दु था, लिली परिधि थी। दोनों एक–दूसरे को प्यार कर रहे थे। इस प्यार में स्त्री का वही हाथ था, जो सृष्टि की क्रीड़ाओं में पुरुष का। लिली दौड़ कर पियानो पर एक अँगरेजी टियून बजाने लगी। डेविड में जितनी मस्ती थी, उतनी ही मस्ती लिली में भी थी। दोनों सराबोर थे प्रणय की मदिरा में। थोड़ी देर के बाद दोनों ने नृत्य किया। आपस में प्यार किया। दोनों एक–दूसरे से अलग होते हुए खूब हँसे। मुझे न जाने क्यों दोनों का व्यक्तित्व हर रूपों में पवित्र लगा। डेविड ने मुझ`बताया, कि उसके खर्च का सब से अधिक महँगा सौदा यही पड़ता है। सौदा, प्यार, लिली, मैं इन तीनों शब्दों को लेकर सोच रहा था। वह हँस रहा था और मैं सोच रहा था। अलग होते समय मैंने डेविड के सामने सड़क पर उसके रोज के पूरे खर्च को याद किया–काफी हाउस, हाउजी, स्वीटमाट, सिनेमा, सिगरेट, शराब, नृत्य तथा और भी न जाने क्या–क्या.....

घर लौटते समय मैंने सोचा, कि ' यह उसका व्यक्तिगत खर्च है। उसके पिता चीफ इन्जीनियर हैं, पैसे वाले हैं। साधारण रूप में उसके और न जाने कितने खर्च होंगे ! तब भला वह कैसे किसी अन्य को दावत, पार्टी देता ?' चौराहे से मुडत्रते समय मैंने फिर मैंनेजर के बँगले को देखा। आज चारों ओर प्रकाष हो रहा था। मैंने ड्राइंग रूम के सोफे को देखा। वह अभी तक सूना था। फिर भी मैं उसे देखता रहा; लेकिन कुछ नहीं देख पाया।

रात्रि के सूने में अब मेरे सामने प्यार के तीन अनूठे चित्र थे। एक प्यार वह था, जहाँ मनुष्य अपने अंक में किसी को कस कर प्यार करता है। अपने बाहुपाष को वज्र–सा कठोर करता जाता है, वह काँपती है, लजाती है, मगर फिर भी उसे मस्ती आती है। दूसरी ओर प्यार करने वाला अपना सौदा आँकता है, खुष होता है। दूसरा प्यार वह था, जहाँ एक छिपकली दीपक के प्रकाष में रेंगते कीड़ों को पकड़ कर प्यार करती–करती निगल जाती है। तीसरा प्यार, रँगे हुये, पतले ओठों का चुम्बन, प्यालों का सिप, कमर में हाथ डाल कर नृत्य करने की भंगिमाओं का था। प्रथम प्यार में मैंने दीनता देखी, मैंने उसे अपनी सहानुभूति का दान दिया। इस प्यार में मैंने एक ओर से घुल–घुल कर मरना देखा था। दूसरे प्यार में एक शरीर को दूसरे में सदा के लिये लोप होते देखा, वहाँ मुझे घृणा हुई। मैंने उसमें प्यार की प्रवंचना देखी। तीसरे प्यार में मैंने बहुत–कुछ देखा; पर मुझे केवल चार वाक्य याद थे–'आई टू लव यू'...'किस'...'इक्सक्यूज मी'...'दैट्स ऑल राइट'...

इन्हीं चार संक्षिप्त से वाक्यों में तीसरा प्यार सीमित था। किस प्यार में कितना बल था ? मैं कितना ठीक था ? मुझे कुछ नहीं पता। प्रथम प्यार की अनुभूति ने मेरी कौतूहलता को अजीब पागलपन में बदल दिया। मेरी सहानुभूति ने मुझे खींच कर उस स्त्री के साथ कर दिया था, जिसे मैं जानता तक नहीं था। दूसरे प्यार में मुझे घृणा के साथ निराषा मिली थी। तीसरे प्यार में मेरे लिये आकर्षण था। मुझे डेविड के खर्च भले लग रहे थे, लिली अच्छी लग रही थी।

————————

तीन

मैं अपने लॉन में अकेला टहल रहा था। अभी बहुत उजाला नहीं हुआ था। इस धुंधलेपन में भी मैं प्यार के तीनों रूपों को मूर्तिवत देख रहा था। मैं बार–बार मैंनेजर के बँगले की ओर खिंचता जा रहा था। इसे मेरा मानसिक पतन कहा जा सकता है; लेकिन यह मेरे मानसिक तथा व्यक्तिगत अन्तर्द्वन्द का प्रतिफल था। इसका उत्तर तथा स्पष्टीकरण वह स्त्री कर सकती थी, जो उस दिन सोफे पर सो गयी थी, सम्भवतः बेहोष हो गयी थी !

कई दिन बीत चुके थे। मुझे नींद नहीं आती थी। मैं उसे जान नहीं पाया था, कि वह कौन थी ! वहाँ क्यों आयी थी। अब कहाँ होगी ? इसी प्रकार के तमाम प्रष्न मेरे सामने आते थे। इन प्रष्नों से न जाने क्यों मुझे बड़ी सहानुभूति हो गयी थी। सहसा मैंने मैंनेजर के टाइगर को सड़क पर दुम हिलाते हुए देखा। वह मुंह खोले बँगले की ओर देख रहा था। मैं उधर सचेत होकर देखने लगा। उसके पोर्टिको से उसकी कार स्टार्ट हुई और सनसनाती हुई मेरे सामने से निकल गयी। मुझे पिछली सीट पर किसी स्त्री की क्षीण झाँकी मिली। मैंने अपनी साइकिल संभाली। टाइगर दुम हिलाता मेरे पास चला आया। मैंने उसे सहलाते हुए कहा–''बँगला छोड़कर इतनी दूर चले आते हो ?''

वह 'कूं–कूं' करता तथा प्यार से बदन को मरोड़ता हुआ मेरे पैरों पर लोट गया।

''तुमने कुछ देखा हैं ?'' मैंने टाइगर से पूछा। वह मुझे देख रहा था, मानो मेरी मूर्खता पर तरस ख रहा हो। मैंने साइकिल की पैडिल सँभाली। टाइगर मेरे पैरों पर लोट रहा था।षायद वह मुझे रोक रहा था। मैंने उसे बहुत समझाया, कि मेरे मन में किसी के प्रति कोई बुरी भावना नहीं, फिर भी वह 'कूं–कूं' कर रहा था।

मैं उसे हटा कर आगे बढ़ना ही चाहता था, तब तक चम्पा ने पुकारा ''बाबू जी ! इतने सुबह आज कहाँ ?''

मैं चुप था। मेरी साइकिल चुप थी। टाइगर चुप था। मैं सोच रहा था, कि क्यों आज मुझे सभी रोक रहे हैं ! कार भी न जाने कितनी दूर निकल गयी थी। मैं रूक गया। टाइगर दुम हिलाता हुआ अपने बँगले की ओर भागा। चम्पा अन्दर चली गयी। क्या इतनी ही देर के लिये सब मेरे सामने आये थे ? मुझे बड़ा आष्चर्य हुआ। मैंने चम्पा को पुकारा। वह दौड़ती हुई मेरे पास आ गयी। सामने मैंनेजर की कार लौट रही थी। मैंने चम्पा को दिखाया। वह कुछ समझ नहीं पा रही थी। वह बार–बार पूछती थी–''क्या है बाबू जी ?''

मैं क्या बताता ? किन शब्दों में बताता ? फिर भी मैंने चम्पा को बताया–मैंनेजर की कार की ओर इंगित किया।

''तब इससे क्या ?'' चम्पा ने बहुत ही सावधानी के साथ कहा।

मुझे बहुत आष्चर्य हुआ। चम्पा मुझ से दो साल छोटी थी। उसके दिल में कितने बड़े–बड़े प्रष्न होंगे, जहाँ यह प्रष्न उसके लिये कुछ मूल्य ही नहीं रखता। वह हँस रही थी। मैंने चम्पा से कहा–''वह कोई बाहरी औरत है। मैंनेजर उसे कहीं से लाता है और फिर वापस कर आता है।''

उसे कुछ भी आष्चर्य तथा कौतूहल नहीं हुआ मेरी बात पर। वह गम्भीर थी। चलते समय वह बोली–''बाबू जी ! आपसे मतलब ! वह मैंनेजर है, रईस है !''

चम्पा चली गयी। मैं अकेला रह गया। ''बाबू जी आपसे मतलब ! मैंनेजर है, वह रईस है !'' उसके ये शब्द मेरे किनारे टकरा रहे थे। पर मैं चम्पा की सलाह मानने को तैयार न था।

\+ \+ \+

यूनिवर्सिटी में डेविड भेट हुई। प्यार के तीसरे नायक को मैंने नमस्ते किया। मैं उसे बहुत ध्यान से देख रहा था। उसके व्यक्तित्व से सटे हुए उसके तमाम खर्चों की लम्बी सूची देखता था। पर वह मुझे अच्छा लगता था। मैंनेजर की भाँति नहीं, बल्कि कुछ दूसरी भाँति। मैंने उसे गुरू मान लिया। मेरी इच्छा होती, मैं उससे प्यार की पहली कहानी कह दूँ, शायद वह इसका पता लगा सके। मैं बार–बार कहने का साहस करता था। पर ना जाने क्यों साहस नहीं होता था। मुझे इस अनुभूति में गुद–गुदी मिलती थी। एक गुलाबी नषा सा मिलता था।

मैं क्लास में उदास रहने लगा। डेविड उसके बारे में अवसर पूछा करता था। मेरी चिन्ता व्यक्तिगत थी। वह निराधार भी हो सकती थी। फिर भी में इसे किसी से नहीं कहना चाहता था। चम्पा से मैंने अवष्य कहा था; पर वह गम्भीर नहीं हुई सुनकर। हो सकता है, वह विषय ही गम्भीर न रहा हो, पर मेरे लिए तो गम्भीर था। मैंने प्यार का प्रथम रूप देखा था–'वह भी उसका नग्नतम रूप। कौन जाने इसी अनुभूति पर मैं संसार को, उसके समस्त व्यापार को देखने लगता। यह अनुभूति मुझे अन्धा भी बना सकती थी, आँखे भी खोल सकती थी। अतः मैं बिना इस रहस्य को जाने रह नहीं सकता था!

कालविन रोड़ पर मेरी साइकिल धीरे–धीरे चल रही थी। मेरे साथ डेविड नहीं था। मैं बहुत दूर तक उस सड़क पर अकेले चल रहा था। मेरे साथ केवल मेरे प्रष्न का विकराल रूप था। मैं इसी में भूला हुआ चल रहा था। सामने से सनसनाती हुई मोटर निकल पड़ी। मैं जैसे जाग पड़ा। अब तक की अपनी तन्द्रा में कुछ नहीं देख पाया था; पर एकाएक मेरी साइकिल की गति तीव्रतम हो गयी। मेरी साइकिल स्पष्ट शब्दों में कह रही थी, कि यह कार मैंनेजर की है और मेरे प्रष्न की नायिका इसी से सम्बन्धित है ! सम्भवतः इसीलिये मेरी साइकिल कार के पीछे दौड़ पड़ी। फिर भी मैं बहुत पीछे छूट गया। थोड़ी देर के बाद उसकी सनसनाहट भी बिलीन हो गयी। फिर भी मेरी साइकिल में उत्साह था। वह भगी जा रही थी। मैंने कार को लौटते हुए देखा। मुझे विष्वास सहसा नहीं हुआ, ि कवह कार लौट रही थी। पर थी वही कार। व्हील पर था मैंनेजर। मैं कुछ और सोचने लगा। पर न जाने क्यों, मेरी साइकिल बढ़ती जा रही था। सामने चौराहे पर प्रकाष हो रहा था। उसके दूर धुंधल के प्रकाष की अन्तिम रेखा को मैंने किसी को पार करते हुए देखा। मेरी साइकिल वहाँ पहुँच कर रुक–सी गयी। यद्यपि मैं कुछ नहीं समझ पा रहा था, मैंने देखा, एक शुभ्रवसना युवती सैंडिल पहने हुए लज्जानत हो सड़क पर चली जा रही थी। मैं प्रत्येक लाइट–पोल पर उसे घूरकर देखता था, वह मुझे देखती थी। पर षंकित नयन, नत षिर, न जाने कैसी अस्त–व्यस्त–सी। वह वही थी षायद; पर मेरे पास इसके लिये कुछ आधार नहीं था। हम लोग चौक पहुँच गये–हजारों की भीड़ में, प्रकाष में। वह कुछ नहीं देख रही थी। सीधे न जाने क्यों बढ़ती जा रही थ। मैं उसके साथ–साथ बढ़ रहा था। वह भीड़ को चीरती हुई अजीब गति से जा रही थी। अब मुझे आष्चर्य होने लगा। साथ ही मैं शंकित भी हो उठा। मैं उसके साथ आगे बढ़ने से हिचकने लगा। पर मेरी साइकिल बढती ही जा रही थी। उसने फिर एक बार मुझे देखा। वह देवी–सी प्रतीत हो रही थी। चम्पा की भाँति इसकी भी अवस्था मुझ से कम जान पड़ रही थी।

'क्या इतना साँचे में ढला हुआ स्वस्थषरीर 'उस' अडक–वृत्त में शून्य–सा विलीन हो सकता था ?' मैं कह रहा था–'नहीं'; पर बढ़ती हुई मेरी साइकिल 'हाँ' कह रही थी। वह मुझे दिखा रही थी, कि यही नारी का विराट व्यक्तित्व है, जो दो हाथों में कस लिया जाता है। मैं सब कुछ देखता हुआ भी कुछ नहीं देख रहा था। वह आगे बढ़कर एक गली में मुड़ गयी। मैं मोड़ पर रुक गया। गली में जाने की मेरी हिम्मत नहीं पड़ती थी। पर मैंने वहीं से देखा, वह पास ही एक दो मंजिले मकान के अन्दर चली गयी। दरवाजे के सामने म्युनिसिपैलिटी का लैम्प जल रहा था। मैं थोड़ी देर तक खड़ा रहा,

फिर गली में बढ़ गया। मैं मकान के सामने खड़ा था। मकान सूना दिखायी पड़ा। बरामदे के नीचे एक मैली–कुचैली बुढ़िया कुछ जला रही थी। मैं उसके पास पहुँच गया। मुझे देखते ही उसने गालियाँ आरम्भ कर दीं। मुझे विचित्र प्रकार की लज्जा आ गयी। पर मुझे गालियाँ प्रिय लग रही थीं। हाँ, उसका इस प्रकार चीखना मुझे अवष्य बुरा लग रहा था। मैंने उस घर को बार–बार देखा। उसमें विचित्र प्रकार का सूनापन मिल रहा था। मुझे सब बातें निराधार प्रतीत होने लगी थीं। मैं परेषान–सा था। मैंने फिर एक बार बुढ़िया की ओर दृष्टि उठायी, वह आग फूंक रही थी।

''का देखत है रे, हियाँ कौनो नाहीं रहत।'' उसने क्रोध में आकर कहा।

मैं आगे बढ़ गया। मैं थक चुका था; पर मेरी साइकिल में गति थी। घर आकर मैंने चम्पा से कुछ बात करना चाही; किन्तु न जाने क्यों, मुझे चुप रहना अधिक प्रिय लग रहा था। क्या मेरी सारी चिन्ता और चुप्पी निराधार थी ? मनुष्य जिसे इतना प्यार कर सकता हूँ, अपने से जकड़ सकता है, उसके साथ इतना दुराव क्यों ? वह अप्सरा सी थी, कोमल थी। क्या उसे चौराहे से उतनी दूर पैदल जाने में थकान नहीं लगी होगी ? उसे कष्ट नहीं हुआ होगा ? सब कुछ हुआ होगा। वह कितने रहस्य छिपाये उस सूने घर में चली गयी थी। मेरी चिन्ता में कितने प्रष्न बनते जाते थे, उसमें पैंठते जाते थे। मैं इसमें बेकार जकड़ा जा रहा था। पर यह बिल्कुल बेकार था। मैंनेजर इतना बड़ा रईस, पूँजीपति; उसकी प्रेयसि कोई भी बन सकती थी। चम्पा भी इस बात को कई बार कह चुकी थीं पर उस युवती के साथ मैंनेजर के वर्ताव पर मुझे चिन्ता तथा कौतुहल हो रहा था। इसका प्रभाव मेरी पढ़ाई पर पड़ चुका था। मैं पुस्तकों से दूर हटता जा रहा था। कया यह मेरा मानसिक पतन था ? उससे इस प्रकार मेरा खिंच जाना मेरी निर्लज्जता थी ? पर मैंने कभी इन बातों को सोचा तक नहीं !

दूसरे दिन मेरी साइकिल फिर निकली। अब की बार न दुम हिलाता हुआ टाइगर मेरे सामने था, न मुस्कराती हुई चम्पा। मैं पूर्ण स्वतन्त्र था। मुझे न जान क्या हो गया था। जाते हुए मैंने मैंनेजर की कार को प्रणाम किया। उसका बँगला सूना था।...मैं कुछ ही देर में गली में उतर गया। गली अभी सूनी थी। केवल एक जमादारिन झाड़ू दे रही थ। बुढ़िया चीथड़ों में लिपटी हुई उसी गर्द में अचेत सो रही थ। मैं क्षणभर तक उसे देखता रहा। उसके सूखे मुख पर विषाद, चिन्ता, घृणा तीनों की छाप थी। वह धूल से, कालिख से, टूटे–फूटे बर्तनों से चीथड़ों से पूर्ण थी। मैंने समझा वह भी इन वस्तुओं से, सम्भवतः इस जीवन से प्यार कर रही हो।

मेरी इच्छा होती थी, कि मैं घर के अन्दर चला जाऊँ किसी का नाम लेकर पुकारूँ। मैंने बरामदे से देखा, घर चारों ओर खुला था। मैं साइकिल के साथ अन्दर गया। एक बड़े कमरे को पार करता हुआ मैं आँगन में उतर गया। घर बिल्कुल सूना था। वहाँ किसी की छाया तक नहीं देख पड़ रही थी। फिर भी घर में डर नहीं मालूम हो रहा था। आँगन में खड़ा रहना मुझे अच्छा लग रहा था। मैंने ऊपरी कमरों की ओर दृष्टि डाली, सर्वत्र सूना था। पर मेरी साइकिल कह रही थी, 'ऊपर चढ़ जाओ।' मैं जीने पर चढ़ने लगा। चार सीढ़ी चढ़ने के उपरान्त मैंने घूम कर अपनी साइकिल देखी, वह आँगन में मजे से खड़ी थी। उसके ठीक ऊपरी कमरे में मुझे कुछ कपड़े दिखाई पड़े। मैं वही रुक गया। मैं वही से ऊपर चढ़ने से हिचक रहा था। मेरी साइकिल मुझे बार–बार बढ़ जाने के लिये उत्साहित कर रही थी। मैं जीने को पार करने उसे कमरे में आ खड़ा हुआ, जहाँ से ठीक मेरे सामने उस कमरे की खिड़की खुली थी। मैंने उसकी सफेद साड़ी को खूब देखा। अब उस कमरे की ओर बढ़ने में मुझे लज्जा आ रही थी। मैं अपने को, अपने आधार को दखे रहा था, जो एकदम निर्मूल था। मेरे पास केवल एक लज्जा की अरुणिमा थी, जिसमें मैं शराबोर हो गया था। इस मामले में पड़ने का मेरा कोई अधिकार नहीं था। यदि पड़ा भी, तो समस्या की इस तलहटी में उतरने का मेरा कुछ भी अधिकार नहीं था। पर मैं लाचार था। छिः करते हुए मेरे पैर उधर बढ़ गये।

वह केवल एक कालीन विछे हुए फर्ष पर सो रही थी। षायद उसे स्वप्न में भी यह पता नहीं था, कि उसकी अस्त–व्यस्तता तथा निद्रितावस्था का कोई मनुष्य लाभ उठायेगा। वह एकाकी मनुष्य मैं था। वह बेखबर सी रही थी। उसी साड़ी को पहने हुए, जिसे मैंने उसे कल पहले देखा था। साडत्री का आँचल षरीर के ऊपरी भाग से हटकर उसके बायें ओर कालीन पर फैला था। मुझे महसूस हुआ, उस आँचल के नीचे कोई वस्तु है। युवती को मैं निर्लज्ज हो कर देख रहा था।, उसके वही कुंचित केष, वही सोफे पर दबायी हुई षारीरिक उभरनें, इतना स्वस्थ मांसल व्यक्तित्व !

'क्या यही उस दिन उस वृत्त में बिन्दु सी खो गयी थी ? नहीं, वह आकाष की अप्सरा है। उसे कोई नहीं बाँध सकता !' मैंने सोचा। मैं स्वयं उस रूप–छवि की बिखरी हुई ज्योत्स्ना में डूब–सा गया था। वह न जाने किस महाभारत के उपरान्त मुचकुन्द की निद्रा में खो गयी थी। अधरों का अमन्दराग न जाने किस मरुस्थली में सूख गया था। मेरे हृदय का स्पन्दन क्षण भर के लिये उसके अलक–जाल में मौन हो गया। मैं खड़े–खड़े सो गया, मैं सब भूल गया। टाइगर को भूल गया, मैंनेजर को भूल गया। चम्पा, डेविड, छिपकली, लिली, यूनिवर्सिटी सब–कुछ भूल गया। केवल उसे सिर से पैर तक देख रहा था। सहसा न जाने किसी के नन्हें हाथ ने उसका आँचल उठा दिया। मेरी तन्द्रा भंग हो गयी। मैं बोल उठा–''अरे, यह तो कोई षिषु है !''

अब मैंने स्पष्ट रूप से देखा, नारी की छवि–अरुणिमा में उसके मातृत्व का लावण्य टपक रहा है। उस रूप–माधुरी में मैंने आँख खोल कर मातृत्व की गरिमा देखी। यह मांसल स्थूलता अंक में कदापि नहीं बाँधी जा सकती। उस अंक की छाया में एक नन्हे मानव की प्रतिमूर्ति सोयी थी। मैं जागकर भूल गया। मुझे वहाँ से चला जाना चाहिये, मैं यह भी भूल गया। जो अब तक याद था, वह सब–कुछ भी भूल गया। सोफा भूल गया, चुम्बन भूल गया, युवती की पहले की अठारह वर्षों की अवस्था भूल गया। सोफे के स्थान पर मैंने देखा षिषु का पालना, चुम्बन की जगह मैंने लोरियाँ सुनीं। युवती पालने पर लोकियाँ गाते–गाते मानो बहुत थक कर सो गयी थीं। मेरी इच्छा हो रही थी, मैं उसे जगाकर केवल एक बात पूछ लूं; पर मैं ऐसा नहीं कर पा रहा था।

मैंने घूमकर नीचे अपनी साइकिल देखी। वह मजे से खड़ी थी। मैंने फिर अपनी दृष्टि फेरी बहुत सावधानी से। अब की देखा, वह नन्हा षिषु मात–अंक में बिन्दु–सा लोप हो गया। नारी का मुख–मण्डल उसके आँचल के अन्तरिक्ष में छिप गया था। मैं अब केवल कुंचित केषों को ही देख रहा था। मैं पुकारने ही जा रहा था, कि उसके पलक सम्पुट खुले। उसने अँगड़ाई ली। षरीर का कम्पन सम्पूर्ण तालों से होता हुआ सम पर आकर रुक गया, मैं काँप उठा। उसने षरबती आँखों से मुझे देखा। मैं वहाँ से भाग जाना चाहता था। तब तक वह बायें हाथ के सहारे उठने लगी। वह अब भी खोयी–खोयी–सी थी। उसका सम्पूर्ण वक्षस्थल आँचल–विहीन था। षिषु उस आँचल के नीचे था। उसकी सम्पूर्ण लज्जा मानो वही था।

''मुझे क्षमा करियेगा।'' मैंने नम्रता से डरते हुए कहा और मैं कमरे से बाहर हो गया।

''रुकिये।'' एक टकराती हुई क्षीण आवाज आयी।

मुझे थोड़ा साहस हुआ। मैं अब सामने खड़ा था। वह मुझे बहुत देर तक उसी दषा में देखती रही।

''आप कौन है,'' युवती ने बच्चे को अंक में लेते हुए कहा। अब वह संभल कर बैठी थी।

मेरे पास कोई उत्तर नहीं था। मैं अपना आत्म–परिचय भूल गया। मेरे व्यक्तित्व में कोई रूप नहीं था। मेरे पास केवल प्रष्न ही प्रष्न थे। मैं मूर्तिवत खड़ा था। मेरा इच्छा हो रही थी, कि अब भाग जाऊँ। चम्पा की बात याद आ रही थी–'आप से मतलब...'

''बताइये, आप कौन हैं ?'' वह बच्चे को संभालती हुई बोली।

''मैं कोई नहीं हूँ।'' यह उत्तर देते हुये मैं कालीन के पास न जाने कैसे चला आया।

फिर मैं चूप था।

वह उदास हो रही थी। मेरा साहस बढ़ता गया।

''आप यहाँ से चले जाइये।'' उसने उदासी और गम्भीरता से कहा।

यह वाक्य सार्थक था। इसमें सम्भवतः घृणा नहीं था। मुझे बुरा नहीं लगा। मैं इसे पूर्ण रूप से पालन करने के लिये तैयार था। मेरा दाहिना पैर दरवाजे के बाहर था, तब तक मन सुना, बच्चा रो रहा था। मैंने धीरे–धीरे आँगन में उतर कर एक बार फिर ऊपर देखा। वह वच्चे को चुप कर रही थी। मैं बाहर निकल आया। साइकिल पर चढ़ते हुए मैंने बुढ़िया को देखा।

''तुम ही आये हो ई घर मा, अच्छा भवा।'' उसने कहा। मैं चुप था।

————————

चार

''बाबू जी ! मैंने भी सुना है, मैंनेजर साहब अपने घर में एक औरत लाते हैं।'' चम्पा ने मुझ से बातें करने के लिये यह भूमिका बाँधी। मैं चुप था। मैंने कुछ क्षण के बाद 'अच्छा' कहा। वह रूठ–सी गई।

''जाइये, न बोलिये। उसने कहा।

''नहीं चम्पा, मुझे यूनिवर्सिटी को देर हो रही है।''

''जाइये न, मैं आपको रोके थोड़े ही रही हूँ।'' उसने धीरे से कहा।

चम्पा का कहना नितान्त सार्थक था। उसने तो मेरी ही बात कही थी। पर मैं इस बात के बहुत आगे बढ़ गया था। इसी कारण चम्पा की बात मुझे निरर्थक लगी। पर उसे यह सब क्या मालूम। मैं सीधे यूनिवर्सिटी चला गया।

मुझे उस दिन डेविड अच्छा नहीं लग रहा था। संसार का समस्त व्यापार मेरे लिये आकर्षित नहीं था। मैंने क्लास छोड़ दिया। मेरी साइकिल मुझे उसी ओर ले जाने लगी। क्षण भर में मुझे वह चौराहा मिला, जहाँ मैंने मैंनेजर की कार देखी थी। आगे वह स्थान पार किया, जहाँ कार लौटती हुई मिली थी। फिर वह चौराहा मिला जहाँ प्रथम बार उसे कुछ रूपों में देखना आरम्भ किया था। यहीं से फिर मेरी साइकिल की गति तेज हो गयी। वह यहाँ से इसी कारण तेजी से आगे बढ़ रही

थी, कि षायद दूर से किसी बच्चे के रोने की आवाज हवा में तैरती हुई आ रही थी। मेरे हृदय में प्रष्न उमड़ रहे थे। कैसे बेतुके प्रष्न ! मैं उन पर बाहरी रूप से विचार करता हुआ उस घर तक पहुँच गया। मुझे रास्ते की लम्बाई का पता न चला।

इस बार मैंने देखा बुढ़िया वहाँ नहीं थी। उसके कुछ सामान वहाँ अवष्य पड़ा था। मैं निस्संकोच आँगन से ऊपर चला आया। मुझे कमरा सूना मिला। फर्ष पर वही कालीन बिछा था। उसके पहने हुए कल के पूरे कपड़े वहाँ उतरे पड़े थे। मैंने साड़ी देखी। वह कीमती थी। पेटीकोट, ब्लाउज, बॉडिस, इत्यादि सभी आधुनिकतम तथा मूल्यवान थे। इसके आगे मैंने कुछ नहीं देखा। मैं लौट पड़ा।

टावर–क्लाक में बारह बज रहे थे। कड़ी धूप में मैं काल्विन रोड़ से बढ़ा जा रहा था। मैंनेजर का बँगला मिला, उसका टाइगर दिखायी दिया, कार भी दिखलायी पड़ी; पर मैंनेजर को नहीं देख पाया मैं। सड़क पर उतर कर चल रहा था। मेरा बँगला भी आज मुझे सूना लग रहा था। भाभी अपने कमरे में सोयी थीं। मैं उसी को ढूंढ़ रहा था। घर की सब वस्तुयें मुझे बुरी लग रही थीं। उस क्षण अगर मुझे चम्पा मिलती, तो मैं उसे खूब फटकारता। ज बवह रोने लगती, तब मैं षान्त हो जाता।

मुझे प्यास लगी थी। मैंने अपने हाथ से भाभी के कमरे में जा कर पानी पिया। फिर मैं अपने कमरे की ओर बढ़ा। दरवाजा खोलते ही मैंने देखा, कि मेरी आराम–कुर्सी पर चम्पा सो गयी है। उसका मुंह दायीं ओर झुक गया था, जिसका अवलम्ब उसकी गोरी बाँह थी। उसके वक्षस्थल पर से उसका सदा से पड़ा हुआ सावधान अंचल एक ओर खिसक गया था। वह न जाने कैसे यहाँ पागलों की भाँति सो गयी थी। अजीब पगली थी। मुझे उस पर क्रोध आते–आते, तरस आने लगा। वह कितनी थकी–सी सो गयी थी। मैंने इसके पहले आज तक कभी भी चम्पा को इस प्रकार नहीं देखा था। उसका समूचा व्यक्तित्व मेरे सामने बिखरा पड़ा था। उसके सम्पूर्ण षरीर से तिरछी, सुनहली, नीली, पीली, असंख्य रेषमी कान्ति की रेखायें–सी फूट रही थीं। ये रेखायें सीधी मेरे अन्दर एक–एक कर के विलीन हो रही थी। चम्पा का देवत्व मैंने आज अनुभव किया। मैं और दिन उसे देखता ही था, जब वह सिर पर राषन के बोरे लादे हुए दोहरी हो–हो जाती थी। उसके अठारह वर्षों का बोझिल संसार आज न जाने कब से थक कर सो गया था। उसकी कार्यषीलता का सम्पूर्ण मर्मर उसकी पलक सम्पुट में चुप हो गया था। मुझे चम्पा पर बहुत दया आयी। मने अपनी चारपाई पर बैठ कर उसे देखा, खूब देखा, निर्लज्ज हो कर देखा। मैंने उसके धूमिल, बिखरे हुए बालों को देखा। तैल–षून्य उन्नत मस्तक को देखा। कन्धों और गले पर मैल का काली–काली रेखायें देखी। भाभी के पुराने ब्लाउज को देखा। उसके अन्तरिक्ष में मैंने उस उन्नत निधि को देखा, जिसमें देवत्व की उठान थी, जो अमूल्य था, पर जिसका आज तक चम्पा ने स्वयं मूल्यांकन नहीं किया था। उसके गोल–मोल हाथों में मैली चूड़ियाँ देखीं। खुली हुई हथेली में एक ओर हल्दी के दाग, दूसरी ओर कत्थे के धब्बे, किनारे पर बर्तन माँजने के दो काले–काले दाग देखे। उसके नाखून कुछ बढ़े हुए थे, कुछ स्वयं घिस गये थे। उसका मटमैला गन्दा पैर देखा। अंत में मैंने फिर एक बार उसके सम्पूर्ण मुख–मंडल को देखा, जिसे मैं कई वर्षों से सतत देखता चला आ रहा था। पर आज मैंने सब–कुछ फिर देखा। उसकी लम्बी नासिका देखी, जिसके सिरे के छेद में एक सींक पड़ी थी। उसकी सोई हुई काली–काली पलकें देखीं। उसके सम्पुट में मैंने उन स्वप्नों को देखा, जिसे वह देख रही थी। भाभी की फटकार, भैया के व्यंग, उसके अठारह घटों के कार्यों की लंबी लिस्ट, पलकों के नीचे की कालिमा में तैर रही थी। उसके पतले अधरों के मिलन–बिन्दु को देखा, जहाँ कुछ खो–सा गया था। वह सब–कुछ भूल कर, फिर भी सब को संवरण कर के अपनी प्रगाढ़ प्रसुप्ति में न जाने कब से खो गई थी। अंत में मैंने उसकी मोटी तथा दो पैसे में धुली हुई धोती देखी। मैंने सोचा, कि चम्पा को झकझोर कर जगा दूं। मेरे कमरे में उसका इस प्रकार सो जाना संसार के लिये अनुचित था। पर मैंने सोचा, कि आज इसे सो लेने दिया जाय।

मैं चम्पा को उसी प्रकार छोड़ कुछ सोचने लगा। मैंनेजर की प्रेयसी युवती की तन्द्रा में तथा चम्पा की प्रसुप्ति में कितना अन्तर था। उस पर मुझे दया आयी थी। इस पर न जाने क्यों प्यार उमड़ा हृदय में। युवती उस समय कहाँ थी ? मैं इसी को ले, दूर तक विचार करने लगा। मेरे प्रष्नों की रेखायें मोटी और गहरी होने लगीं। मैं सोचता था, कि इस बात को डेविड से बता दूं। वह अवष्य इसका पता लगायेगा। पर मैं डर जाता था। उसके मातृत्व की गरिमा, सलोना षिषु, अपनी समस्त निधि बटोरे, न जान कहाँ चली गयी थी !

चम्पा बेहोष सो रही थी। मैंने सोचा, अब उसे जगा दिया जाय, पर फिर रुक कर सोचने लगा, 'क्या चम्पा उस स्त्री की छाया है ? प्रतिलिपि है ? पर मैं इसे सोच नहीं पा रहा था। चम्पा के ललाट पर पसीने की कई रेखायें बन चुकी थीं। मैं उसे फिर देखने लगा। उधर भाभी के टकराते हुए स्वर आये–''चम्पी !''

मैंने चम्पा का सिर हिलाया। यह हिली तक नहीं। उधर भाभी के सतत स्वर आ रहे थे। मैं उसे जगा रहा था। आज उसमें कितनी स्वतन्त्रता आ गयी थी ? मैं परेषान था। अंत में मैंने चम्पा को उसकी बाँहें पकड़ कर आराम कुर्सी से उठा दिया। वह उठ कर मेरी गोद में चिपक–सी गयी। मैं काँप–सा गया। फिर उसकी निद्रा भंग हुई। मैं लज्जित था। वह अपने को सँभालती हुई भाभी के पास भाग गयी।

चम्पा कितनी पगली थी, कि बेवकूफों की भाँति यहाँ आ कर सो गयी पर कितना अनुभूतिपूर्ण था उसका स्पर्ष !... सम्भवतः इसी को प्यार कहते हैं। चम्पा ने मेरी सहानुभूति को उस युवती से कहीं अधिक ले लिया था। दोनों सहानुभूतियों में केवल इतना अन्तर था, जितना दया और प्यार में। यद्यपि दया की भावना दोनों में मुख्य थी। उस दिन मुझे ज्ञान हुआ, कि अठारह वर्षों का संसार कितना बोझिल होता है–चम्पा की अवस्था वही ह !

मेरी कितनी षादियाँ आती थीं। मैं फोटो देख–देख कर टाल देता था। लोग इसे मेरा मानसिक पतन नहीं समझते थे। मैं अपनी चम्पा से तुलना करने लगा। कितना व्यतिरेक था–चम्पा के बारे में। आज तक किसी ने कुछ सोचा तक नहीं था। वह काम करती जा रही थी। सब आनन्द कर रहे थे। मैंने भी आज तक इस बात पर इस रूप में नहीं विचार किया था। मैं उसे चम्पा के रूप में देखता था, नौकरानी के रूप में देखता था, आज के चम्पा के रूप में नहीं।

\+ + +

मैं क्वीन्स रोड़ से मिस्टर डेविड के घर जा रहा था। मैंने मैंनेजर के गैरज में बहुत देर से उसकी कार नहीं देखी थी। अब मेरी प्रबल इच्छा होती, कि मैं सब बात डेविड को बता दूं। उससे सहायता ले कर युवती का थोड़ा–सा परिचय पा जाता, फिर सदा के लिये उसे भूल जाऊँ। इस इच्छा में, इस लघुता में कितना आकर्षण, कितनी सहानुभूति थी ! इसे केवल मैं ही जान सकता था। रास्ते में मुझे रह–रह कर चम्पा की याद आती थी। पर मे। बढ़ता जा रहा था। चम्पा को याद में एक सिहरन थी, गर्म–गर्म आँसू थे। मेरी साइकिल की गति मन्द थी। षाम हो चली थी। अरोरा पार्क में बल्ब जल रहे थे। मैंने बहुत दूर से डेविड को किसी स्त्री के साथ टहलते हुए देखा। मैंने साइकिल मोड़ दी। मेरे पहुँचने तक डेविड फव्वारे के समीप बेंच पर बैठ चुका था। उसके पार्ष्व में लिली बैठी थी। आज उसके ओंठ इतने लाल थे, कि मुझे बुरे लग रहे थे। दोनों ने उठ कर मेरा स्वागत किया। डेविड ने मुझे पकड़ कर बैठा लिया। मैं पार्क में आनन्द लेने नहीं आया था। मैं केवल डेविड से मिलने आया था। उसकी मस्ती बढ़ रही थी। षायद आज वह मुझे कुछ और दिखाना चाहता था। देखते–ही–देखते उसने लिली की कमर को समेट कर अपने में खींच लिया, और मैंने देखा, वह बुरी तरह से उसका चुम्बन ले रहा था। उसके भी ओंठ लाल हो गये थे। लिली मुस्करा रही थी। मैं मूर्तिवत बैठा था।

मुझे अब यह प्यार भी ठीक मैंनेजर की भाँति प्रतीत होने लगा। मैंनेजर के प्यार में मुझे स्त्री पर दया आती थी। इस प्यार में डेविड मुझे अच्छा लगता था। मैं उठना ही चाहता था, कि लिली हंस कर मेरी ओर झुक गयी। उसने देखते–ही–देखते मेरी कमर को कस लिया। मैं काँप–सा उठा। स्त्री का यह अनोखा व्यक्तित्व सम्भवतः उस दिन मैंने प्रथम बार देखा था। 'मैं तुम्हें प्यार करती हूँ', उसके मुंह से ये षब्द बार–बार निकल रहे थे। उस समय मैं अपने को उस युवती के समीप पा रहा था, तथा लिली मैंनेजर हो रही थी। मैं लज्जा से गड़ गया था। पर न जाने क्यों, क्षण भर में मेरी झिझक तिरोहित हो गयी। मैंने पुरुष की भाँति दृढ़ता से साँस खींची। लिली का यह व्यापार मुझ अच्छा लगने लगा। मेरी आवष्यकता मुझे भूल गयी। लिली मुझे अच्छी लगने लगी। उसमें मैंने नारी–सुलभ कम्पन पाया। उसके रंगे हुए ओंठ प्राकृतिक मालूम होने लगे। उसका चुम्बन मुझे कोमल लगा, प्रिय लगा। मैं वहाँ बैठना चाहता था। मेरी सारी जल्दी भूल गयी। पर चाहे जो हो, लिली मुझ से बहुत आगे थी, मैं उसके बहुत पीछे था। डेविड सब से आगे था। डेविड अँगड़ाई ले बेंच से उठ पड़ा। हम लोग भी उठे। डेविड मुझे आज गम्भीर देख कर बहुत हँस रहा था। विदा होते समय लिली ने मुझ से हाथ मिलाने के बाद डेविड को 'किस' किया। फिर हँसती हुई साइकिल पर बढ़ गयी।

सब–कुछ भूल गया। इस पर मुझे क्रोध आ रहा था। मैं अपनी व्यक्तिगत या मानसिक दुर्बलता पर खीझ उठा।

''किघर जा रहे थे ?'' डेविड ने मेरी गम्भीरता भंग करते हुए कहा।

''तुमसे एक आवष्यक कार्य था।'' मैंने बिना समझे–बूझे उत्तर दे दिया परन्तु याद आते ही बात बदल दी।

डेविड इसे समझ नहीं पाया। वह कुद सोच रहा था। वह मस्ती में था। मुझे अनायास उसके साथ चलना पड़ रहा था। मैंने षीध्र उससे बिदा माँगी। वह आज एक और बात दिखाने को कह रहा था, पर मैं तैयार न था–मेरी आत्मा में, मेरे मस्तिष्क में इतने दिनों के बीच न जाने कितनी बड़ी–बड़ी बातें स्थान पा चुकी थीं।

मैंने काल्विन रोड़ से मुड़ते हए उन वस्तुओं को फिर से देखा। मैं विचारधारा में बह रहा था। हृदय में उस रहस्यमयी युवती का चित्र, उसका कोमल षिषु, चम्पा उसके अट्ठारह वर्षों की अक्षय निधि; डेविड, फिर लिली का स्पष्ट प्यार मुझे याद आ रहे थे। मैं अकेले बढत्र रहा था। पर मेरे साथ तमाम सड़क पर चलने वाले लोग थे। मैं तेजी से बढ़ रहा था। मेरी साइकिल कह रही थी, 'आज उससे अवष्य भेंट होगी !'

\+ + +

पगली बुढ़िया खाना खा रही थी। वह मुझे देखते ही हँस पड़ी। मुझे उसकी हँसी उस दिन बहुत अप्रिय लगी। मैं षीध्र आँगन से होकर उस कमरे में पहुँच गया। कमरा अँधेरा था। बच्चा रो रहा था। मैंने घूम कर दूकान से मोमबत्ती ली। उसके प्रकाष में मैं सीढ़ियों पर सावधानी से चढ़ रहा था। कमरे में पैर रखते ही मैंने देखा, बच्चा एकाकी कालीन पर माँ की

साड़ी में लिपटा हुआ रो रहा था। मैं मूर्तिवत हो गया। मेरे इस लड़कपन सहानुभूति का परिणाम कुछ अवष्य होगा। इसे सोचते हुए भी मैंने बैठ कर बच्चे को अपने अंक में ले लिया। बच्चा सिसक रहा था। उसका गला रुँध गया था। मैंने प्रकाष में बच्चे को देखा। वह मुझ से सिमट कर सो गया। इस समय मैं प्रथम प्यार के उस चौराहे पर पहुँच चुका था, जहाँ से किसी अन्य पथ पर मुड़ा जा सकता था। फिर भी मैं बच्चे को गोद में लिये वहाँ बैठा रहा। मोमबत्ती धीरे–धीरे जल रही थी। उसकी लौ में स्थिरता थी, अकम्पन था। यद्यपि वह कभी–कभी काँप उठती थी। फिर भी वह पूर्ण रूप से घुल–घुल कर जल रही थी–प्रकाष दे रही थी। उसकी स्थूलता घुल कर बह रही थी और धरातल पर जमती जा रही थी। उस जमाव में उसका अंष अवष्य था; पर रूप का तिरोभाव था। मैं उसे अपलक देख रहा था। उसका लघु जीवन क्षीणता की ओर तेजी से बढ़ रहा था। मेरी उस जड़ मोमबत्ती के प्रति अन्तिम कामना थी, कि वह तब तक जलती रहे, जब तक में उस अंष को उस महांष के हाथ न सौंप दूं। मुझे बुढ़िया का अट्टहास वहाँ तक सुनायी पड़ रहा था। मुझे, न जाने क्यों, डर लग रहा था।, बत्ती अपने अन्तिम प्रकाष–पुंज को बिखरा कर बुझने जा रही थी। मैं उससे क्षण भर रुकने की याचना कर रहा था। पर उसने अपना अन्तिम हास्य बिखेर दिया। सीढ़ियों पर मैंने किसी की आहट सुनी। बच्चा फिर रोने जा रहा था। मैंने खड़े हो कर उसे अपने अंक में छिपा लिया। वह फिर षान्त हो गया। मैंने सहसा कमरे में उस मातृ–हृदय और उसके पीछे एक पुरुष को हाथ में टार्च लिये हुए देखा। मैं चोरों की भाँति सहसा खड़ा था। पर मेरा आत्मिक बल बढ़ रहा था। युवती कालीन के नीचे से एक बत्ती निकाल कर जलाने बैठ गयी। पुरुष मैंनेजर का कोई अरदली–सा प्रतीत हो रहा था।

''मुझे क्षमा करियेगा, आप का बच्चा बहुत देर से रो रहा था।'' मैंने खड़े–खड़े बच्चे को अपने अंक से हटाते हुए कहा। युवती नतमूख हो खड़ी थी। बच्चा मेरी गोद में सिमट गया था। युवती की आँखें स्थिर थीं पर, आर्द्र नहीं थीं। वह कुछ सोच रही थी। पुरुष बुद्धू–सा खड़ा था।

''तुम जाओ'', युवती ने उस व्यक्ति को आज्ञा दी।

वह चला गया। अब यह युवती कालीन पर मुझे बैठने का संकेत कर स्वयं भी बैठ गयी।

अब वह मुझसे सट कर बैठी थी। वह गम्भीर थी। उसके रोम–रोम गम्भीर थे। उसने अभी तक बच्चे को मुझसे नहीं लिया।

''आप बड़े भले आदमी हैं /'' उसने मुझे अपलक देखते हुए कहा।

''मैं कुछ नहीं हूँ। आप अपना बच्चा लीजिये। इसने आज बहुत रोया है।''

''आप कब से यहाँ आये हैं ?'' युवती ने कालीन की तह से एक कीमती कलाई घड़ी निकालते हुए पूछा– उसके षब्द काँप रहे थे।

''यही एक घंटे से।

मैं इसके आगे चुप था। वह अब तक अपने बच्चे को नहीं सँभाल रही थी। उसकी पलकें मेरी ओर स्थिर थीं। उसके समस्त व्यापार मुझे उल्टे लग रहे थे। मैंने बच्चे को उसकी गोद में डाल दिया। वह रो रहा था। युवती की पलकों में अजीब–सी उदासी थी। मैं उठ कर बाहर जा रहा था।

''आप कहाँ जा रहे हैं ?'' उसने घबड़ा कर मुझे रोका।

''बाहर ! तब तक आप दूध पिलाइये।''

''अच्छा, आप मेरी लाज निबाहने के लिये बाहर आ रहे हैं ?''

''लाज ! हाँ...'' मैं खड़ा था।

युवती की आँखें सजल हो गयीं। वह षायद रोने जा रही थी। मैं अकारण न जाने किस प्रेरणा से बैठ गया। वह मुझे अपलक देख रही थी। बच्चा दूध पी रहा था। मैंने स्वयं अपना परिचय दिया। युवती का मुख–मण्डल अरुण हो चला था। मेरी गम्भीरता बहुत बढ़ गयी थी। अंक में बच्चा आँखें खोल कर माँ की ओर अपलक देख रहा था। षायद वह नारी की संक्षिप्ततम व्याख्या–''अंचल में दूध और आँखों में पानी''–को हृदयंगम कर रहा था।

उसने अपना पूर्ण परिचय दिया। वह एक बंगाली युवती थी। उसका नाम था 'नीरू'। उसने आँसुओं से भिगो–भिगो कर अपनी करुण कथा सुनायी। गत वर्ष की सत्रह जुलाई की धुंधली सन्ध्या का नाम लेते ही वह रो पड़ी। उसका पति उसी दिन उससे छीना गया था। उस दिन उसका सर्वस्व फूंक डाला गया, लूट लिया गया। वह बेहोषी की दषा में फुट–पाथ पर छोड़ दी गयी थी। उसने अपनी चेतना 'किंग जार्ज हास्पिटल' में फिर पायी थी। वह लौट कर अपने घर आयी। मकान के भग्नावषेष को देखा। सब–कुछ लुट चुका था। उसका देवता उसके मन्दिर से छीना गया था। वह रो रही थी। अंत में उसने अपने को टटोला था, देखा था। उसके गर्भ में पति का प्रतिरूप अब भी शेष था। वही बालक उस महांष का लघु अंष था। आज वही माँ का अमृत–पाथेय बन कर उसकी गोंद में लेटा था। माँ उसे कभी–कभी परिचय में 'काला मुख' कह दिया करती थी। षिषु माँ की गोद में उसकी करुण कहानी हँस–हँस कर सुन रहा था। मैं उसे देख रहा था अपलक, पाषाणवत !

रात के ग्यारह बज रहे थे। मेरी इच्छा नहीं होती थी, कि मैं आगे और कुछ पूछूं। पूछने पर पता चला, युवती ने भोजन कर लिया है।

''कहाँ ?'' मेरा प्रष्न बहुत ही स्वाभाविक था। सम्भवतः इसी प्रष्न की लता से मुझे वह पुष्प मिल जाता जिसके लिये मुझे कामना थी। वह मौन, निर्निझु देख रही थीं।

''मैंनेजर के यहाँ।'' उसने क्षीण षब्दों में कहा।

''कौन मैंनेजर ?'' मैं बहुत व्यग्र था।

''मिस्टर घोष, ओरियन्टल बैंक के मैंनेजर।''

सम्भवतः मेरा सम्पूर्ण मुख–मंडल अरुण हो गया। मेरी दृष्टि फर्ष पर गड़ गयी। मुझे स्पष्ट सुनायी पड़ने लगा, मानो मिस्टर घोष का टाइगर अपने बँगले पर भूंक रहा था। मेरी साइकिल मुझे बुला रही थी। मुझे लगा, दरवाजे पर खड़ी चम्पा बुला रही है। उसकी फटकारें मुझे चुनौती–सी दे रहा थीं। 'आप से मतलब'–डेविड पार्क में हँस रहा था। लिली मुस्करा रही थी। मेरे व्यक्तित्व से सम्बन्धित सभी व्यक्ति हँस रहे थे, कुछ न कुछ बोल रहे थे। मैं चुप था, फर्ष पर पिघल कर फैली हुई मोमबत्ती चुप थीं नीरू का आर्द्र मुख और उसके आँसू चुप थे, नन्हा बच्चा भी चुप था। नीरू निस्संकोच कहती जाती थी, कि 'उसके पति के ढाई लाख रुपये का एकाउन्ट मैंनेजर के बैंक में हैं। वह कलकत्ते में पत्र व्यवहार करते–करते थक गयी, तब यहाँ चली आयी। उसी का धन, उसी का रूप, उसकी अठारह वर्षों की तरुणाई एवं कमनीयता, दुधमुंह बच्चे का त्याग, उसका सब–कुछ, उसका समूचा व्यक्तित्व, नारीत्व, इसकी युग–युग की लालसायें बरसती हुई आँखों की धारा में बह गयीं। उसने मेरे सामने सब–कुछ कह दिया स्पष्ट, खुले षब्दों में। उस दिन देखी हुई बात से और भी घनीभूत बात थी वे। मेरी तो अनुभूति केवल बच्चों की भाँति थी। नीरू भी मुझ से बहुत आगे थी। वह निर्बल नहीं दीख पड़ती थी। वह स्वयं अपना पथ निर्माण कर सकती थी। उसके साथ मैंनेजर का आदमी इसीलिये आया था, कि उसका प्रबन्ध अब 'पैराडाइज होटल' में हो गया था। उसको 15 नम्बर का कमरा मिला था होटल में। वह आज ही वहाँ जाने वाली थी।

मैं आगे और सुनने को तैयार न था। मैं उठ पड़ा। बारह बज रहे थे। युवती को ले चलते समय मुझसे पूछा–''आप यहाँ क्यों आये थे ?''

मैं क्या उत्तर देता ? सचमुच मुझे यहाँ नहीं आना चाहिये था। मेरी सहानुभूति व्यर्थ की थी। नीरू स्वयं अपने पथ पर चलने वाली प्रतीत हो रही थी। मुझे–जैसे व्यक्ति को राह दिखा सकती थी। मैं व्यर्थ में उसके घर गया। संसार में सभी आनन्द से सो रहे थे। केवल मैं जाग रहा था। अभी तक भोजन नहीं किया था मैंने। चम्पा भी षायद तब तक जाग रही होगी मेरी प्रतीक्षा में ! मोमबत्ती बुझने जा रही थी। मैंने उसके अन्तिम ज्योति–पुंज में युवती के सतेज मुख को देखा। फिर कल प्रातःकाल मिलने का वादा कर विदा हो गया।

——————

पाँच

कल की बात दूर भी, कई दिन हो गये, मैं नीरू के पास न जा सका। मेरे विवाह की समस्या अजीब रूप बना कर मेरे सामने खड़ी थी। न जाने कैसे लोग बिना मुझसे जाने मेरा विवाह तय कर चुके थे। मेरी अनुमति भर की देर थी। भैया के प्रति अपार स्नेह, भाभी की असीम श्रद्धा, मेरा निजी आदर्ष तथा सरल स्वभाव, सभी एक ब्यूह बना कर मुझे घेर चुके थे। इस ब्यूह की ये अलग–अलग दीवालें थीं। इन दीवारों में खिड़कियाँ नहीं थीं। दीवाले पक्की थीं।

नीरू का सजल मुख दुधमुंहें बच्चे की याद, चम्पा का व्यक्तित्व, लिली के गुलाबी ओंठ, इस व्यूह से निकलने के लिये टेढ़े–मेढ़ रास्ते थे। मैं सब के बीच में था, अकेला था, मेरे साथ न मेरी साइकिल थी, न चलता–पुरजा डेविड, न मेरा आज तक का सम्पूर्ण व्यक्तित्व, न दुम हिलाता हुआ टाइगर। वे सब एक किनारे थे, बाहर थे। मैं बीच में था, एक दम बीचों–बीच।

विवाह के बिना अनुमति दिये मैं घर नहीं छोड़ सकता था। घर पर सब लोग ताना मार रहे थे। चम्पा आँगन में खड़ी मुस्करा रही थी। उस पगली को अपने पर भी दया नहीं आ रही थी। वह अपने अठारह वर्ष की अमूल्य निधि के नाम पर भी नहीं रो रही थी। बल्कि वह हँस रही थी। मैं विचार–संसार में डुबकियाँ लगा रहा था, मानो सब–कुछ सोचने के लिये एक मैं ही था।

पाँचवें दिन प्रातःकाल, चम्पा ने मुझे अखबार दिया। स्थानीय समाचार में मैंने पढ़ा, कि 'द्वारिका लेन' में एक बेहोष बच्चा पाया गया। मैंने अखबार बन्द कर दिया। अब मुझे घर से निकलना था। मुझे विवाह के लिये कुछ राय देनी थी। मुझे एक दरवाजे से निकलना था। क्या किया जा सकता था ? मैंने भैया से कह दिया, कि मैं षादी नहीं करूँगा। उस समय मेरी आँखें लज्जित हो जमीन में गड़ी थीं। सभी मुझ पर नाराज हो उठे थे; यहाँ तक कि चम्पा ने भी कह दिया–''बाबू जी का दिमाग नहीं है।''

+ + +

सरकारी अस्पताल में मैंने बच्चे को देखा। वह वही दुधमुंहा बच्चा था, जिसे उस दिन नीरू के पास देखा था। बच्चे को इंजेक्षन दिये गये थे। वह दुबला हो गया था। नर्स ने बहुत बुरी सूचना दी थी। मैं हैरान था। मैं दौड़ता हुआ द्वारिका लेन से उस मकान पर आया। मैंने कमरे को देखा। कमरा सूना था। वहाँ कोई नहीं था। केवल पिघली हुई मोमबत्तियों का मोम था जमीन पर। मैंने लौट कर बुढ़िया को देखा। उसका सारा सामान वहीं बिखरा पड़ा था। वह वहाँ नहीं था। जमादारिन दूर से उधर आ रही थी। मैंने उस बुढ़िया के बारे में पूछा। उसने बहुत उदासी के साथ कहा–''बाबू जी, कुछ दिन हुए वह इसी गली के मोड़ पर कार से दब कर मर गयी !''

यह कह वह चली गयी।

मुझे बुढ़िया की गाली, उसकी हँसी याद आ रही थी। आखिरी हँसी सम्भवतः वह अपने विनाष पर हँस रही थी। मैं षीध्र पैराडाइज होटल के मैंनेजर से जा कर मिला। वहाँ पता चला, कि आज तीन दिन हुए 15 नम्बर के कमरे में 'नीरा मुखर्जी' नाम की कोई युवती आयी थी, पर इस समय कमरा बन्द है। मैरी बेचैनी बढ़ती जा रही थी।

मैं सीधे मैंनेजर के बँगले पर आया। मैं उसके पोर्टिको में खड़ा था। टाइगर मेरे पास दुम हिलाता हुआ खड़ा था। मैंने अर्दली से पूछा–''मैंनेजर साहब कहाँ हैं ?''

पता चला, कि वे तीन दिन हुए आगरा चले गये।

''अकेले या किसी के साथ ?'' मैंने अर्दली से पूछा।

''हुजूर, पिकनिक पर गये हैं,'' उसने हँसते हुए कहा। और यह भी बताया, कि वे कार से गये हैं।

''कार से जाना उचित ही पड़ता'', मैंने अपने मन में कहा, मैं लौट रहा था। टाइगर का मुंह मेरे पैर पर था। मैंने उसे अकारण एक और झटक दिया। वह भोली आँखों से उदास–सा हो कर मुझे देखता ही रहा।

'क्या मेरी साइकिल आगरा जा सकती है ?' मैंने क्षणभर में सोचा। आगरा में जमुना की छटा, नदी–तट का सूनापन, दूर कुंज के तले से ताज–महल को चार आँखों से देखना, षाहजहाँ और मुमताज–की सौगन्ध खाना, उस धवल, मूक मकबरे के प्रति प्रवंचना...ओह, मैं आगरा नहीं जा सकता ! पर मैं वहीं से वहाँ का सारा व्यापार देख रहा था। मेरी चेतना, मेरे लिये 'टेलीविजन' का कार्य कर रही थी। मैं सड़क पर खड़ा सोच रहा था, 'डेविड यूनिवर्सिटी गया होगा। भैया आफिस गये होंगे। अस्पताल में बच्चे को होष आया होगा। चम्पा रूठ कर भी षायद मेरा इन्तजार कर रही होगी।'

मैं घर लौटा। भाभी अपने कमरे में थीं। चम्पा बर्तन माँज रही थी।

''मैंने सोचा था, कि तुम सो गयी होंगी।''

''आप ऐसा ही सोचते हैं।'' चम्पा ने कहा–''मैं भी सोच रही थी, आप दूल्हा बन गये हैं।'' और वह खिल–खिला कर हँस पड़ी।

''चम्पा, तुम ने कभी दूल्हा देखा है ?'' मैंने कपड़ा उतारते हुए पूछा।''

''बहुत बार देखा हैं बाबू जी ! मनन बाबू को देखा, सुधीर भैया को देखा, अपने बड़े बाबू जी को देखा है और अपने साथ की बीसों लड़कियों के दूल्हों को देखा है। आपको भी देखूंगी।'' वह अन्तिम वाक्य के पूर्ण–विराम तक पहुँचते–पहुँचते हँस कर लोट गयी।

मुझे उसकी हँसी में कुछ और मिला। उसके रोम–रोम में रहस्य भरा था। उसने कितने दूल्हों–दूल्हनों को देखा था। तब क्या उसने कभी भी अपने बारे में नहीं सोचा होगा ? क्या उसने बचपन में गुड्डे–गुड़ियों का खेल नहीं खेला होगा ? अपने हाथ से बीसों गुड्डों को नहीं सजाया होगा ? वह सब–कुछ जानती होगी। सब कुछ सोचती होगी।

मैंने उसके व्यक्तित्व में एक महान रहस्य का अनुभव किया। उसमें मैंने आँसुओं का खौलता हुआ सागर देखा, जो अभी–अभी हास्य के रूप में क्षण भर के लिये उफन आया था। चम्पा में कितनी साधना थी। उसका चरित्र कितना ठोस था ! नीरू के भी एक बच्चा था। फिर भी वह आगरे गयी। सब–कुछ भूल कर, सब की ममता तोड़ कर। लिली का कितना चलता हुआ व्यापार था !

संसार कितनी तेजी से आगे बढ़ रहा है ! यह कितना यथार्थ है ! यह लज्जा को भूलता जा रहा है। झट से एक से आरम्भ होता है, दो हो जाता है, तीन हो जाता है, चार, पाँच, छः, सात, आठ, नौ, दस तक पहुँच कर अपनी इकाई, दहाई बढ़ाता हुआ अंत में पिघल जाता है।

पर चम्पा स्थिर थी। उसका षरीर, उसका समस्त मांसल प्रगति, देखते–देखते बारह से आरम्भ हो कर अठारह तक पहुँच गया थी। पर वह एक जगह खड़ी थी, मानो वह लुज्ज थी, अकेली थी। उसने प्रगति करना सीखा ही नहीं। उसके पलक–सम्पुटों में आँसू बढ़ते जाते थे, लेकिन वह उन आँसुओं को पोंछती नहीं थी। उसमें इतना संकोच !

उसे जिस स्थान पर उसकी विधवा माँ ने छोड़ा था, वह आज भी उसी स्थान पर खड़ी थी। नितान्त अकेली खड़ी थी, अनन्त प्रतीक्षा लिये। वह आकाष–दीप की डोर खींच कर खड़ी थी मगर आगे नहीं बढ़ पायी थी। उसके चाँद से मुखड़े

पर घूंघट था और आँचल में दीप था। उसने अभी तक उस दीप का प्रकाष शायद नहीं देखा था। किन्तु मैंने सब–कुछ देखा था। जब अकेले में चम्पा की सुधि लेकर सोचने लगता तब सोचते–सोचते इतनी दूर आगे बढ़ जाता, कि मेरे सामने अँधेरा छा जाता था।

मैंने सुना, कि अस्पताल में बच्चे की तबीयत खराब है। उसे सूखा रोग हो गया। मैं हास्पिटल रोड़ से बढ़ता चला जा रहा था। म्युनिसिपल बोर्ड की पानी की टंकी के पास, चौराहे पर मैंने दूर से भीड़ देखी। वहाँ साइकिल से उतर कर मैंने देखा, दो आदमी पुलिस की रस्सियों में सावधानी से बँधे थे। उनके ऊपर डण्डे पड़ रहे थे। एक का सिर फूट गया था। खून के कतरों से उसका कुरता षराबोर हो गया था। सब देख रहे थे, हँस रहे थे। ज्ञात हुआ, कि दोनों शराबी हैं, आपस में लड़ रहे थे। मैं आगे बढ़ गया। आगे आकर सोचने लगा, यह भी एक प्रकार का प्यार था शायद। अभी तक मुझे जितने प्रकार के प्यार दिखायी दिये थे, उसमें सब से ऊँचा किन्तु भीषण प्यार मुझे उसी चौराहे पर मिला। अपनी गाढ़ी कमाई के पैसे, अपनी बोतल की शराब, अपना बदन, अपना पसीना, अपने खून, लोगों की हँसी.....'मनुष्य में प्यार करने की कितनी क्षमता है !'' मैंने मन–ही–मन कहा।

अस्पताल के द्वार पर मैंने देखा, चार बच्चों की लाषें निकाली जा रही थीं। मैं काँप उठा। मैंने जमादार से उनके विषय में पूछा। उसने उन्हें लावारिस बताया। मैं दौड़ता हुआ बच्चों के वार्ड में गया। बच्चा किसी नर्स की गोद में नहीं था। मैंने उसे बिस्तर पर आँखों में आँसू भर कर देखा। उसका पेट बहुत बढ़ गया था। वह रो नहीं पा रहा था। उसकी चिकित्सा, पोषण केवल नाम के लिये था। बरामदे में बैठी अँगरेजी के प्रसिद्ध कवि 'वायरन' के प्रेम–पत्र पढ़ रही थी। उसने मेरी ओर ध्यान तक नहीं दिया। कुछ पूछने पर उसने उल्टे–सीधे उत्तर दिये। मैं कुछ सोच नहीं पा रहा था। बच्चे की आँखें बन्द थीं। मैं उदास था। मेहतरानी मेरे सामने खड़ी थी। उसने साहस बटोर कर कहा–''बाबूजी, बेबी बड़ा होनहार है। इस पर कुछ रुपया लगाइये, बीबी का खुष करिये।'' और वह मुस्करा कर चली गयी। मैं अवाक् रह गया। रुपया और मृत्यु, रुपया और जीवन, रुपया और प्यार, रुपया और धर्म–कर्म इत्यादि। मेरा सिर चकरा रहा था। मैंने एक बार नर्स को देखा। वह भी मुझे देख रही थी। उसने अजीब तरह से अगड़ाई ली, और एक अदा के साथ कहा–''कहिये, बाबू साहब ?''

मैं गुम–सुम–सा खड़ा सोच रहा था, कि क्या उसने ही मेहतराइन को यह कहने के लिये भेजा था ? उसने क्यों इतनी देर में अपना बर्ताव बदल दिया ? उसके उलटे उत्तरों को सुन कर मैं चुप था। वह क्यों फिर बोलने चली थी ? मैंने स्पष्ट उसकी वाणी में रुपयों की खनखनाहट का आभास पाया। मैंने न जाने किस अज्ञात–प्रेरणा से उसे पाँच रुपये का नोट दिया। नर्स ने हँसते हुए बच्चे को गोद में उठा लिया। उसने खूब प्यार किया उसे। चलते समय उसने नम्रता के साथ मुझसे नमस्ते किया।

मैं घर लौटते समय सोच रहा था, कि बच्चे को अपने साथ ले आता, तो ठीक रहता ! कौन जाने, भाभी और चम्पा उसे पाल लेती ! मैं बार–बार सोचता था, स्त्रियों में पुरुषों से अधिक प्यार करने की क्षमता होती है। लेकिन मेरी साइकिल, मेरे पाकेट का पर्स, बच्चे का मुरझाया मुख सभी मिलकर कह रहे थे, मैं गलत सोच रहा हूँ। प्यार कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो किसी एक के अधिकार में हो। पर मैं किसी को नहीं मान रहा था।

मेरी साइकिल बढ़ती हुई मैंनेजर के बँगले के सामने आ गयी। मैंने देखा, उसकी कार गैरेज में खड़ी थी। बँगले पर काफी चहल–पहल थी। मैंने न जाने किस प्रेरणा से निस्संकोच उसके पोर्टिकों में घुस कर पुकारा–''मैंनेजर साहब !''

''हुजूर डाइंनिग रूम में हैं। आप तषरीफ रखिये।'' अर्दली ने आरामकुर्सी को इंगित करके कहा। मैं सोच रहा था, नीरू मैंनेजर के साथ अवष्य होगी। वे अभी–अभी आगरा से लौटे थे। पर मैंने नीरू के बारे में किसी चपरासी वगैरह से नहीं पूछा।

मैंनेजर ने खाना खाया फिर पता चला, कि आराम कर रहे हैं। फिर मालूम हुआ, वे सो गये। मैंने घण्टी बजायी, चपरासियों को फटकारा तब मैंनेजर मेरे सामने आया।

''क्या है ?'' मैंनेजर ने बहुत अजीब निगाह से मुझे देखते हुए पूछा। उसके मुख पर क्रोध के–से भाव थे।

''आप आगरे से कब लौटे ?'' मैंने उल्टा प्रष्न किया।

''आप से मतलब, आप कौन हैं ?'' उसने अभिमान सूचक शब्दों में कहा। मैं लज्जित था। सचमुच उसके सभी प्रष्न सार्थक थे। मैं बिल्कुल निरर्थक था। मैं वही खड़ा था। मैंनेजर अन्दर चला गया।

''मैंनेजर साहब अकेले हैं ?'' मैंने बूढ़े अर्दली से पूछा।

''जी हाँ, इस समय अकेले हैं।''

मुझे इसी उत्तर की आवष्यकता थी। मैं बेकार आया। मुझे अपनी मूर्खता पर लज्जा आयी। मेरी साइकिल 'पेराडाइज' की ओर बढ़ रही थी। वहाँ पहुँच कर मैंने बैरा के हाथ अपना नाम लिख कर 15 नम्बर के कमरे में भेज दिया। बैरा मुझे उस कमरे तक पहुँचा कर लौट आया। नीरा चाय पी रही थी। मैंने उसे आँख खोल कर देखां उसकी पिछले एक सप्ताह

की प्रगति भी देखी। वह बहुत आगे बढ़ चुकी थी। वह अब नीरू नहीं थीं, बल्कि 'नीरा मुखर्जी' थी। दुधमुंहे बच्चे की माँ नहीं थी, बल्कि थी एक युवती, कुमारी।

कमरे के फर्ष पर बड़ा–सा कालीन बिछा था। दीवार से सटे हुए सोफा सेट रक्खे थे। बीच में गोल, छोटी–सी सुन्दर मेज थी। मेज पर मेजपोंष के ऊपर दो अमेरिकन गुलदस्ते हँस रहे थे। कमरे की सारी चीजें–पंखा, बड़ा शीषा, अँगरेजी बेड, श्रृंगार की मेज इत्यादि–मुझे विष्वास दिला रही थीं, कि वह नीरू नहीं है।

पर थी वह नीरू ही, उस बच्चे की माँ, उस दिन तक उस सूने घर में रहने वाली एकाकिनी। वह मुझे देख कर लज्जित नहीं हुई। आज वह बहुत खुष थी। वह मुझे देखकर झिझकी नहीं, नाराज नहीं हुई। अपितु मुझे सोफे पर बैठने के लिये इंगित कर उठी। मैं सोफे पर बैठ गया। उसने बैरा को चाय का सामना लाने के लिये आदेष दिया। मैंने अपने आने की क्षमा माँगी; पर उसने हँस कर टाल दिया।

''आप से मिलकर आज बड़ी खुषी हुई।'' नीरा ने कहा।

मैं चुप था, बनावटी रूप से मुस्करा रही थी।

''आप को यहाँ मेरा पता कैसे चला ?''

''बहुत ढूँढ़ने के बाद आपके उस दिन के वाक्य ने मुझे यहाँ पहुँचाया।'' मैंने थोड़ी देर चुप रहने के बाद कहा।

''किस वाक्य ने ?'' उसने उत्सुकता से पूछा।

''आपने कहा था न, कि आपका प्रबन्ध 'पैराडाइज होटेल' में हो गया है।''

वह खिल–खिला कर हँस रही थी। मैं आज उसे स्वयं दीन बन कर देख रहा था। वह चाय के प्याले को देख रही थी। मेरी आँखों के सामने बच्चे का पीला मुख था, उसका लम्बा पेट था; लेकिन उसके सामने आगरे की न जाने कौन–सी बात थी। नीरू ने मुझे चाय प्याला दिया तथा स्वयं पीना आरम्भ कर दिया।

''अब आप यहाँ आनन्द से हैं न ?''

''जी हाँ ! सब आपकी दया है।'' उसने चाय का एक घूंट लेते हुए कहा।

''बच्चा कैसे है ?'' मेरे मुंह से यह प्रष्न निकल गया, यद्यपि मैं इस प्रष्न को नहीं रखना चाहता था।

''बच्चा ! क्या बताऊँ, उसने भी मेरा साथ छोड़ दिया।'' नीरू ने झट अपनी मुख–मुद्रा बदल दी। फिर उसने अपनी बात को विष्वास–योग्य बनाने की गरज से कहा–''आपने इधर आना छोड़ दिया, और बच्चा रोते–रोते न जाने क्यों अंकारण ही सूख गया। उसे न जाने क्या हो गया। तीसरे ही दिन उसने अन्तिम साँस ली और सदा के लिये आँखें बन्द कर लीं।''

उसके अन्तिम वाक्य के विराम तक पहुँचते–पहुँचते मुझे ऐसा जान पड़ा, कि मेरा सिर फट जायगा। मैंने चाय को पीना बन्द कर दिया।

''अब दुःख करने से क्या होगा ? उसका जन्म ही ऐसे समय में हुआ था। ईष्वर को यदि दया आती, तो उसका जन्म किसी और समय हुआ होता।''

मेरा सिर घूम रहा था। मैं सोफे पर लेट गया। नीरू ने मेरी दषा पर आष्चर्य प्रकट किया। मुझे आष्चर्य तथा भ्रम हो रहा था, कि मैं नीरू, एक माँ से बातें सुन रहा हूँ ! नीरू के रोम–रोम पर मुझे आष्चर्य हुआ। मैंने उसे दूर तक देखा, वह सब–कुछ खो कर आनन्द से यौवन की चंचल छाया में प्रणय–घूंट पी रही थी। वह तीन वाक्यों से तीन आत्माओं पर आक्षेप लगा रही थी–मुझ पर, अपने पति पर तथा निरपराध बच्चे के ऊपर।.....

''हाँ तब बच्चा मर गया, लेकिन उसकी अन्तिम क्रिया कैसे हुई ?''

''जमुना में प्रवाहित कर दिया।''

''मैं ऐसे समय में आप से नहीं मिल सका, क्षमा करियेगा।''

''क्षमा की कोई बात नहीं। उसकी मृत्यु ही इतनी आकस्मिक हुई, कि मैं स्वयं कुछ नहीं सोच पायी।'' नीरू ने कहा–''इसके उपरान्त मैं मन बहलाने के लिये आगरा चली गयी थी।'' आज ही लौट कर आयी हूँ ।

डसकी वाणी में हिचक न थी। जैसे उसे कोई बहुत बड़ी निधि मिल चुकी थी। उस निधि ने अपने षिषु, अपने स्वयं के अंग का विछोह भी भुला दिया था उसे। मैं आगे कुछ नहीं पूछ सकता था। नमस्ते करके चलने लगा।

''आप फिर किस समय मिलियेगा।''

''ईष्वर जाने।'' कह कर मैं बाहर चला आया। मुझे भ्रम हो रहा था, शायद यह बच्चा किसी और का था। मुझे स्वयं इस भ्रम पर हँसी आ रही थी। मैं सीधे अस्पताल आया। बच्चे की दषा कुछ ठीक थी। मैंने उसे अंक में भर लिया। मैंने उसके रोम–रोम को देखा। वह वही बच्चा था, जो उस दिन सिमट कर मेरे अंक में सो गया था। नीरू उसकी माँ थी। वह उसके ही महांष का एक लघु अंष था।

मैंने बच्चे को हाथों में उठा कर खूब चूमा, ओर चलते समय नर्स को फिर दस रुपये दिये। वह मुझे एक–टक देखती ही रह गयी।

————————

छः

बिना किसी की अनुमति लिये मैं बच्चे को घर ले आया। सब लोग असन्तुष्ट थे। मेरे बारे में लोग न जाने क्या–क्या सोचने लगे। केवल चम्पा मुझ से खुष थी। उसने उसी क्षण से बच्चे को अपने में छिपा लिया था। नन्हा–सा बच्चा विषेषकर चम्पा के जीवन का प्रमुख अंग बन गया।

शाम का वक्त था। मैं अपने बँगले की लान में टहल रहा था। भैया के कमरे में रेडियों बज रहा था। मैंने दूर से साइकिल पर नर्स को आते हुए देखा। मैं खड़ा हो गया। वह नमस्ते करके मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी। उसने दूसरे क्षण दौड़ कर बच्चे को देखा। नर्स के हृदय में मुझे बच्चे के प्रति अपार श्रद्धा मिली। वह उसे चूमती हुई मेरे सामने लिये खड़ी थी।

''मेरा बेबी कितना अच्छा है ?'' उसने कहा । वह स्वयं हँस रही थी, बच्चे को हँसा कर मुझे भी हँसा रही थी।

''यह मेरा बेबी है, आपका नहीं।'' उसने स्वाधिकार से कहा। इसके उपरान्त हँसती हुई, उसने बेबी को चम्पा के हाथों में दे दिया। चम्पा घर में चली गयी।

नर्स ने उस दिन आग्रह किया, कि मैं उसके साथ टहलने जाऊँ। मैंने साइकिल उठायी। वह मुझे ले कर पार्क की ओर बढ़ने लगी। अँधेरा हो चुका था।

हम लोग पार्क में पहुँच कर एक षिला खण्ड पर बैठे थे। वह भी मुझे लिली की भाँति लग रही थी। इसी समय मेरे पूछने पर उसने अपना नाम 'डैजी' बताया। नाम कितना छोटा था, और वह कितनी विस्तृत थी–अस्पताल से पार्क तक फैली थी। मैं उसके नाम को मन–ही–मन दोहरा रहा था। उसने मेरे हाथ का प्यार से स्पर्ष किया। मैं उसे आरम्भ से आज तक फिर से देख रहा था। प्रथम भेंट में उसने मुझ से बात नहीं की, दूसरे में उल्टा जवाब दिया, तीसरे में मैंने उसे ठीक तौर से देखा, उसने भी प्यार दिखाया, चौथे में मेरे तथा बच्चे के प्रति उसने नीरू तथा चम्पा से अधिक प्यार दिखाया। आज उसका पाँचवाँ व्यक्तित्व मेरे सामने था। वह मुझे अपने में कुछ आत्मघात–सा कर के देख रही थी। मैं उसकी बहुरूपता को देखता हुआ भी उसने दूर नहीं हो पाता था। मैंने उसमें, उसके नाम में, उसके व्यवहार में सौन्दर्य देखा।

उसने मुझसे अलग होते समय अपना एक फोटो दिया। मेरी फोटो के लिये उसने प्रार्थना की।

मैं सीधे घर लौट आया। लान में डेविड टहल रहा था। उसने मुझे एक खुष–खबरी सुनायी–''मुझे कुल षाम को सात सौ का स्नोबाल मिला।''

''अच्छा, अब प्रोग्राम ?'' मैंने हँसते हुए पूछा।

''सब रुपये भी खत्म हो गये।'' उसने हँसते हुए कहा।

मैं निस्तब्ध हो गया। उसने पाँच सौ रुपये के तो उसी रात को लिली को उपहार दिये थे। शेष बचे ही कितने !

डेविड को विदा कर के मैं सोचने लगा, कि सचमुच उसके हृदय में लिली के लिये कितना प्यार था। पाँच सौ रुपये ! ओह ! उसका प्यार मुझे उन पिटते हुए शराबियों से भी अधिक कड़ा मिला। मैंनेजर, नीरू के प्यार से अधिक उत्सर्गपूर्ण मिला।

पर मैंने तो 'डैजी' को कुछ पन्द्रह रुपये दिये थे। उसका प्यार लिली से कम नहीं था। वैसे तो लिली भी मुझे प्यार करती थी, यद्यपि उसे मैंने कुछ नहीं दिया था। अतः आज में इस परिणाम पर पहुँचा, कि मानव प्यार करता है। उसके समस्त व्यापार का केन्द्र यह प्यार ही है। उसमें प्यार करने की एक आदत होती है। बिना इसके वह जा नहीं सकता। तो समस्त संसार प्यार करता है। यह एक प्रवाह होता है, जिसमें वह बहता जाता है, अपना पथ स्वयं निर्माण करता हुआ। इस प्रवाह में वह सब–कुछ भूल जाता है, अपने आदर्ष अपने सिद्धान्तों तक को भूल जाता है, फिर नये–नये आदर्ष बनते रहते हैं। इसमें हर आदमी क्षम्य है। सब इन्सान निर्दोष हैं। सब को अन्धे हो कर प्यार करना चाहिये। प्यार के सभी रूप ठीक हैं।

मैंने इस निष्कर्ष पर नीरू को क्षमा कर दिया। उसके पापों को भूल गया। मैं या कोई अन्य पुरुष संसार की गति नहीं बदल सकता। नीरू, डैजी, लिली, कुछ अर्थों में अपने–अपने पथ पर चल रही थी। संसार चल रहा था। सभी अपने अर्न्तगत में एक थे। एक भावना ही सबल थी। मैं भी उसी में बहने लगा। मेरे व्यक्तित्व के कूल टूट गये। जिसकी जो आदत है, संसार उसी के अनुसार है, संसार उसी के अनुसार चलेगा–उसे कोई बदल नहीं सकता। मुझे संसार के साथ चलना चाहिये। डेविड कितना प्रसन्न था अपने संसार में !

मैंने दौड़ कर बच्चे को प्यार किया। चम्पा हँस रही थी। मैंने निस्संकोच उसे अपनी बाहुओं में कस लिया। वह मुस्कराती हुई रह गयी।

दौड़ता हुआ 'पैराडाइज' के कमरा नम्बर 15 में पहुँचा। नीरू कपड़े बदल चुकी थी। उसने हँसते हुए मेरा स्वागत किया। वह स्थिर खड़ी थी। मैं उसे अपलक देखता हुआ उसके एकदम निकट पहुँच गया, सट गया। वह हँसती हुई खड़ी

रही, मानो वह मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। वह मेरे अंक में सिमट गयी। नीरू मेरे स्पर्ष से जैसे वह खिल–सी गयी थी। उसने मुझे पकड़ कर सोफे पर बैठा लिया। वह उस दिन बहुत खुष थी, सर्वथा मुझमें खोयी हुई–सी।

''हुजूर, साहब की कार आयी है।'' बैरा ने कमरे के बाहर से ही सूचना दी।

''किसकी कार ?'' मैंने पूछा।

''घोष बाबू जी !''

''मैंनेजर साहब की !''

''हाँ, बहुत भले आदमी हैं न ?'' वह मुझे हिलाती हुई पूछ रही थी। मैं क्या बताता ? नीरू मैंनेजर की प्रषंसा खुले षब्दों में कर रही थी। ''वे कितने ईमानदार हैं। उन्होंने मेरा सब हिसाब चुका दिया है। मन बहलाने के लिये वे अपने साथ आगरा ले गये थे मुझे।''

''इसीलिये तुमने बच्चे को फेंक दिया था !'' मैंने मन–ही–मन कहा, 'षायद आज वह अपने इस पाप को भी प्रगट दें। पर उसने केवल आगरा की यात्रा के बारे में और कुछ नहीं कहा।

''अब कलकत्ता वापस चली जावोगी ?'' मैंने गंभीरता से पूछा।

''इसके बारे में मैं फिर बताऊँगी।'' उसने गिलास में अपना प्रतिबिम्ब देखते हुए कहा।

मेरी प्यार की धारणा सुदृढ़ होती गयी। मैं वहाँ से विदा होकर सीधे घर चला आया। आज मैं वाह्य रूप से प्रसन्न था, और मैं प्रयत्न कर रहा था, कि सब–कुछ भूलकर आन्तरिक रूप से भी प्रसन्न हो जाऊँ, अपना पथ निर्माण कर लूं।

मुझ में अनायास एक परिवर्तन आ गया था। मुझे संसार की वस्तुओं में प्यार मिला। मुझे रात भर गहरी नींद आयी।

दूसरे दिन मैं उसी भावना को लेकर उठा। प्राची की अरुणिमा में मुझे लिली के ओठों की सुधि आयी। पल्लव तथा लता के हिलने में मुझे नीरू की सुकुमारता और कमनीयता की याद आयी। मन्द समीर में मुझे चम्पा के निःष्वासों का अनुभव हुआ ! सारा प्रभात–मण्डल मुझे एक मधुषाला–सा प्रतीत हुआ–अन्तरिक्ष में मैंने ऊषा को मधुबाला के रूप में झाँकते हुए देखा। इस मधुषाला के द्वार अभी बन्द थे, पर पीने वालों का कोलाहल बढ़ता ही जा रहा था। मुझे लगा, मैं भी उन्हीं पीने वालों का कोलाहल बढ़ता ही जा रहा था। मुझे लगा, मैं भी उन्हीं पीने वालों में से एक हूँ। और मेरे साथ हैं, नीरू, चम्पा, डैजी, लिली और डेविड।.....

चम्पा बेबी को गोद में लेकर दूध पिला रही थी। वह मुझसे रूठ कर कुछ कह रही थी। उसके रुठने में सौन्दर्य था; उसकी लज्जा की अरुणिमा में सपनों की मीटी–मीटी मुस्कान थी।

मेंने कल नीरू को प्यार किया था। मुझे डैजी की भी सुधि आयी। मैंने अपनी जेब से निकाल कर उसकी फोटो देखी। वह प्यार से मुस्करा रही थी।....

मैं नाष्ता करके सीधे डैजी के स्थान पर गया। डैजी अपने कमरे में ड्रेसिंग–टेबिल के सामने डयूटी के कपड़े पहन रही थी। अन्दर प्रवेष करते ही मैंने देखा, वह चेहरे में पाउडर लगा रही थी। उसने मेरा स्वागत किया। मैं आगे बढ़ा। वह मेरे अंक में बहुत सावधानी के साथ खो गयी थी। मैं मुस्करा रहा था।

उसे हास्पिटल में डयूटी पर छोड़ सीधे घर चला आया। मेरी साइकिल में तथा मेरे अन्दर एक विष्वास आ गया। मैंने उस विष्वास को चार–चार स्थानों पर चार रूपों में देखा। मेरी प्यार की धारा दृढ़तर हो गयी। मेरी चिन्ता दूर हुई। 'ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय' वाली उक्ति का अनुसरण कर रहा था। अब मुझे मेरी पुस्तकें प्रिय लगीं। क्लास के लेक्चर अच्छे लगे। मैं दूसरे ही क्षण में सोचने लगा, कि एम0 ए0 षीध्र कर लूंगा, कहीं अच्छी नौकरी मिल जायेगी, फिर आनन्द रहेगा।

\+ \+ \+

पर जैसे सुधि की नीरवता में मुझे अब भी बेबी का रोना सुनायी पड़ता था। चम्पा की बड़ी–बड़ी आँखों में, उसकी सरल मुस्कान में एक गम्भीर चिन्तन में डूबी नारी मिलती थी, जिसका मुख पला था और वह सूने आकाष को उठी हुई पलकों से एक टक निहारती थी। चम्पा नारी थी; किन्तु एक अधूरी नारी, जिसकी आँखों में केवल पानी था; पर आँचल में दूध का अभाव था। उसकी इस अधूरी कहानी को लेकर मैं सोचने लगता था; लेकिन मेरे उस चिन्तन में पहले की भाँति कडुआपन नहीं था, निराषा का घटाटोप अन्धकार भी नहीं था, बल्कि अब मुझे कुछ–कुछ प्रकाष दिखायी पड़ रहा था।

मैं अब नीरू को मैंनेजर के साथ घूमता हुआ देखने लगा। मुझे अब इसमें ईर्ष्या की भावना नहीं होती थी। वह मुझे भी बहुत प्यार करती थी। मैंने कई दिन सोचा, कि उसे उसका बेबी दे आऊँ; पर ऐसा नहीं कर पाता था। मैं जब–जब इस प्रष्न को लेकर उसके पास गया, तब मैं न जाने किस धारा में बह जाता था। मुझे लज्जा आने लगीं, कि मैं नाहक ही इसके 'सुखमय' जीवनाकाष में घूमकेतु क्यों बनूं ! मैं उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा, जब नीरू फिर कभी बेबी के लिये चिन्तित होगी। हाँ, जब उसकी यह खुमारी उतरेगी !.....

इधर भाभी फिर कई दिनों से मेरी षादी के बारे में कह रही थीं। बहुत–सी शादियाँ आ रही थीं। सचमुच भाभी मेरी कितनी शुभचिन्तक थीं ! मैं यूनिवर्सिटी जा रहा था। भाभी ने रोक कर कहा–''मिस्टर घोष ब्याह करने जा रहे हैं।''

''बैंक मैंनेजर ?'' मैंने घबरा कर पूछा।

''हाँ वही ! क्या समझते हो, सब तुम्हारा ही तरह पागल हैं ?''

'मैंनेजर शादी करने जा रहा है !..... किसके साथ ?.....शायद नीरू के साथ....' मैं इसी को सोचता हुआ क्लास में गया। मुझे इसमें कौतूहल मिलता था; पर इसमें प्रसंनता की भावना गौण थी।

मैं अब बेबी के बारे में बहुत सोचने लगा। चिन्तन की प्रवृति अब फिर जोर पकड़ने लगी। पर मुझे भ्रम भी होने लगा कि हो सकता है, मेरा यह सब सोचना गलत हो।

मैं नीरू के पास नहीं जा सका। बेबी के पेट में कुछ दर्द था। चम्पा उसे दवा पिला रही थी। आज वह बहुत रो रहा था। मैं चम्पा के सामने उदास बैठा था। थोड़ी देर में बेबी सो गया। चम्पा अपनी विजय पर मुस्करा उठी।

''लीजिये, आपका बेबी सो गया।'' उसने उठते हुए कहा।

''मेरा ! तो क्या वह तुम्हारा नहीं चम्पा ?''

''मेरा क्यों ? आप न जाने कहाँ से लाये हैं !''

मैं उदास हो गया।

इसके बाद वह हँसते हुए चली गयी।

बच्चा सो रहा था। मैं उसे अपलक देख रहा था। मैं किन्हीं गम्भीर भावों में डूबा हुआ था।

चम्पा उसे फिर देखने आयी। वह वहाँ मुझे देखकर हँस पड़ी, परन्तु षीध्र ही गम्भीर हो गयी।

''बाबू जी, आपने सुना है, मैंनेजर की शादी होने जा रही है ?''

''मैंनेजर की षादी !'' मैं मानो सोते से चौंक पड़ा।

''हाँ ! मैं एक दूल्हा और देखूंगी। आप उस दिन पूछते थे न, मैंने कभी दूल्हा देखा है द्य दूल्हन भी षहर में ही है।''

''पगली कहीं की। तुम्हें कैसे मालूम ?''

''गौरी ने बताया है।''

मेरे कान लाल हो गये। गम्भीरता से मैंने फिर पूछा––''दूल्हन षहर में आ गयी है ?''

''जी हाँ। गौरी कह रही थी, कि वह किसी होटल में टिकी है। उसके साथि वे आगरे गये थे।'' चम्पा यह कह कर मुस्करा उठी।

''तुम इतनी क्यों प्रसन्न हो इस खबर से ?''

''मैं ? बारात, दूल्हा, दूल्हन, नाच, बाजे, तमाषे देखूंगी।'' वह अब भी मुस्करा रही थी। वह मेरे एकदम पास चली आयी। मैं उठ खड़ा हुआ। मैं चिन्ता में डूबा–उतरा रहा था। उसी समय अकारण ही चम्पा, डैजी, लिली, डेविड की सुधि ने मुझे घेर–सा लिया।....

मैं प्रसन्नता से 'पैराडाइज' की ओर बढ़ रहा था। मैं नीरू से मिला। वह बहुत प्रसन्न थी। उस प्रसन्नता के पीछे गम्भीरता थी, आत्म विष्वास था।

''आपको बधाई देने आया हूँ।'' मैंने सोफे पर बैठते हुए कहा।

''सचमुच ?'' उसने मेरे दाहिने हाथ को दबा कर पूछा।

''जी हाँ, सचमुच !''

''आप कितने अच्छे हैं ! ओह ! मुझे केवल आपकी अनुमति लेनी थी। नीरू ने मुझे समझाया––नहीं, उसकी नारी ने मुझको समझाया, मुझे झकझोर कर समझाया, मुझे उदाहरण दे कर, आँखों में पानी लाकर समझाया, मैंनेजर मिस्टर घोष कितने भले आदमी हैं, कितने उदार है। उसे कितना प्यार करते हैं वे ! उसने फिर एक बार मेरे सामने व्यक्तित्व के समस्त अणु–परमाणओं को तौला। वे खरे उतरे ! नीरू के व्यक्तित्व ने, उसके अन्दर छिपी नारी ने मुझे समझाया। मैं मान गया। मैं अपने परिवर्तन पर बहुत प्रसन्न था। मुझे किसी के मार्ग में रोड़ा नहीं बनना था। मेरी इच्छा हो रही थी, कि मैं स्वयं मैंनेजर के साथ नीरू की शादी करने की जिम्मेदारी लेता। मैं प्रार्थना कर के बेबी को मैंनेजर के सम्मुख नीरू को सौंप देता। मैंनेजर से मैं क्षमा माँगता, पैरों पड़ता और उस मासूम प्राणी को ग्रहण करने की भीख माँग लेता !

————————

सात

बेबी रो रहा था। चम्पा उसे दूध पिला रही थी। घोष के बँगले पर ग्रामोफोन बज रहा था। सारा मुहल्ला गूंज रहा था। बहुत ऊँचे सेषहनाई की कोमल लहरियाँ आ रही थीं। बच्चे को सुला करषीध्र ही चम्पा 'घोष' के यहाँ जाने वाली थी। दूल्हन के आने का समय हो रहा था।

मैंने बच्चे को ले लिया। चम्पा मैंनेजर के घर चली गयी। मैं अपने कमरे में बच्चे को थपकियाँ दे कर सुला रहा था। बाजों और मोटरों की आवाज कानों में पड़ रही थी। बच्चा सो गया। मैं अपने लान से मैंनेजर के बँगले को देखने लगा। मैं प्रसन्न होता हुआ भी उदास था। नीरू और मैंनेजर की सजी हुई कार आगे–आगे थी। बँगले के द्वार पर तुमुल ध्वनि हो रही थी। मैं सुन रहा था। इसी कोलाहल में मैंने बच्चे की चीख सुनी। मैं दौड़ता हुआ उसे उठा लाया। वह बुरी तरह रो रहा था।षायद वह नीरू और मैंनेजर के इस व्यापार के विरुद्ध विद्रोह का नारा बुलन्द कर रहा था।

मैं बच्चे को गोद में लिये बहुत परेषान था––मुझे अपने पर बड़ा क्रोध आ रहा था। मैंने यह विपत्ति मोल ही क्यों ली ? भाभी मुझ से परिहास कर रही थीं। भैया क्रोध के मारे लाल हो गये थे। मैं उनसे अपने को बचा रहा था। मैं इधर–उधर बहुत घूमा। बच्चे कोषान्त करने की बड़ी कोषिष की। पर वह रोता ही रहा। मुझे 'डैजी' की याद हो आयी। बेबी उसकी गोद में चुप हो जाता है। चम्पा के ऊपर मुझे अकारण ही क्रोध आ रहा था।

मैं उदास बच्चे को लिये अपने कमरे में खड़ा था। भैया पीछे से फटकार सुना रहे थे–''तुमने यह विपत्ति कहाँ से पाली ? यह न जाने किसका बच्चा है। इसके कारण तुम्हारी पढ़ाई, मेरा तमाम रुपया बरबाद हो रहा है। तुम्हें अपनी इज्जत और परम्परा का ध्यान नहीं।''

भैया मुझसे स्पष्ट कह रहे थे, कि मेरा पतन हो रहा था। यही उनके फटकार का सारांष था।

'मेरे ही कारण एक दिन उन्हें भी लज्जित होना पड़ेगा !' यह उनकी भारी आषंका थी। मैं चुप था––बच्चा भी चुप होकर मेरे उदास चेहरे की ओर देख रहा था। आज तक भैया के सामने मेरी ऐसी हालत नहीं हुई थी। अपने बचपन, किषोरावस्था, तरुणाई में कभी भी सम्भवतः ऐसी बात मुझे नहीं सुनायी पड़ी थीं।

भैया फटकार कर चले गये। मुझे आत्म–ग्लानि दे गये। मैं बच्चे को अंक में लिये अपने कमरे में गुम–सुम खड़ा खिड़की से बहुत दूर कुछ देखने का प्रयास कर रहा था। क्षितिज की मिलन–रेखा पर मैंने नीरू को उभरते देखा। उसके वह अस्त–व्यस्थ थी। फिर उसके पीले मुख को देखा; सून घर की पृष्ठ भूमि पर उसे एकाकी माँ के रूप में देखा, बच्चे को अपने अंक में छिपाये हुए। आगरे के ताज–महल के चबूतरे पर चाँदनी रात में उसे हंसते हुए देखा। पैराडाइज होटल के रूम नम्बर 15 में श्रृंगार कर के एक आईने में अपना रूप देख कर स्वयं मुग्ध होते देखा। अन्तिम चित्र में नीरू दूल्हन के रूप में दिखायी दी। वहषरमाती हुई मैंनेजर के घर जा रही थी। मैंनेजर स्वभामिमान से आगे–आगे अपने ड्राइंगरूम को पार कर रहा था। किन्तु नीरू का बच्चा सम्पूर्ण क्षितिज पर फला था, वह सारे चित्रों की पृष्ठ भूमि था। नीरू बहुत दूर चली गयी, बच्चा वहीं रोता हुआ सो गया था।

मैंने कल्पना–जगत से विदा लेकर बच्चे को निहारा, वह सचमुच सो गया था। मेरी पलकों से आँसू उसके सूखे पर ढुलक कर गिर पड़ा। मैं बच्चे को अपलक देख रहा था। चम्पा धीरे से मेरे कमरे में आयी। मैं उसे बड़ी देर तक नहीं ताड़ पाया। उसने मरी उदासी को खूब देखा। उसने मेरी गोद से बच्चे को ले लिया। वह दूध पिलाने जा रही थी। मैं वहीं खड़ा था।

''बहुरानी बड़ी अच्छी है बाबू जी।'' उसने बच्चे को दूध पिलाते हुए कहा। मैं मौन था।

''बच्चे के साथ–साथ आप भी रोये हैं क्या ?'' उसने सीधे वाक्य में कहा। मैं लज्जित होकर अपनी आराम कुर्सी पर बैठ गया। मेरी वाणी खुल गयी। मैंने चम्पा से बातें कीं। उसने नीरू की सौ मुखों से सराहना की। चम्पा की बातों ने मुझ में नवजीवन दिया। मैं फिर पुरुष हो गया। वह मुझे समझा रही थी, कि जो स्वयं आत्म विष्वासी है संसार उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। भैया की फटकारें मेरे ह्रदय से धुल उठीं। मैंने सोचा, 'मैं अब चम्पा के साथ उनकी फटकारें सुनूंगा। उन्हें समझा लूंगा।' बच्चा मुझे प्रिय लगने लगा। चम्पा ने कहा, कि जो जिसके साथ है, उसकी भी कुछ किस्मत है, उसका भी ईष्वर है, उसका भी भविष्य है। उसने मुझे याद दिलाया, मैं पढ़ा लिखा हूँ, नौजवान हूँ।

\+ \+ \+

डैजी अकेली थी। उसे अपने माँ–बाप का ज्ञान न था। पर उसे इसकी कोई चिन्ता न थी। वह अपने पथ पर चलती जाती थी।

लेकिन उसने भी कई बार मुझ से पूछा था, कि यह बच्चा किसका है। मैं कभी–कभी सोचता, साफ–साफ बता दूं। पर मेरा कंठ काँप जाता था। डैजी इतना तो जरूर जानती थी, कि मैं इस बच्चे के कारण घर में अप्रिय बनती जा रही थी। अतः उसका यह प्रष्न स्वाभाविक था। डैजी से मैंने एक दिन बताया, यह बेबी एक बड़े घर का है। उसे मैंने कहीं देखा था। उसने इस बात पर बहुत मजाक उड़ाया था मेरा।

अब वह कह रही थी, कि इस बात को अखबार में निकलवा दिया जाय। जो इसका पिता या निकट–सम्बन्धी होगा, वह ले जायगा। मैं उससे सहमत नहीं होता था। डैजी मेरे हठ पर कई बार रूठ भी चुकी थी।

भाभी–भैया चम्पा को डाँटने लगे। बच्चे को उसकी गोद में देख कर वे लोग बुरा मानने लगे। मैंने उन्हें बहुत समझाया, पर उनकी नाराजगी बढ़ती ही गयी, मानो मैं और वह नादान षिषु संपूर्ण संसार में एकदम निस्सार थे, मूल्यहीन

थे। उस दिन मैं बिल्कुल चुप था, जिस दिन चम्पा ने आँखें में आँसू भर कर कहा था, कि 'बाबू जी ने कहा है, कि तुम्हें बच्चे के साथ घर से निकल जाना पड़ेगा, अगर फिर तुमने बच्चे को उठाया। उसने आखिरी बार भाभी के सामने उसे दूध पिला कर सुला दिया था। फिर वह उन लोगों के सामने नहीं छू सकी थी। वह मेरे पास आ कर बहुत–बहुत रोयी थी। मैं उदास था। न जाने क्या–क्या सोच रहा था। अब बच्चे से चम्पा भी छीन ली गयी थी। केवल उस मासूम प्राणी से ही सब को दुष्मनी थी ! अ बवह सम्पूर्ण रूप से मेरे सहारे था। फिर भी चम्पा की नारी छिपे–छिपे बच्चे की सेवा करती थी।

कई महीने बीत गये। नीरू, मिसेज घोष, धर्मपत्नी, बहू माँ इत्यादि बहुत–कुछ बन गयी थी। वह इन समस्त संज्ञाओं में पूर्ण रूप से पवित्र हो गयी थी। वह लक्ष्मी–सी अपने बँगले में, मेरी सड़क पर, मैंनेजर के साथ घूमती थी। मैं कभी–कभी छिप कर उसे मैंनेजर के साथ बहुत देर तक देख करता था। मुझे उसे खुले आम देखने में बहुत लज्जा आती थी। नीरू मेरे लिये नीरू थी, मैं उसे किसी अन्य रूप में चाह कर भी नहीं देख पाता था। मैं उसके बँगले पर बहुत कम जा पाता था। यद्यपि वह तथा मिस्टर घोष मुझे अपने यहाँ कभी–कभी षाम को बुलाते।

मेरे हृदय पर, मेरे आत्म–सम्मान पर काफी धक्का पड़ चुका था। इसका एकमात्र कारण था यह बच्चा, जिसके मूल में नीरू का चरित्र था। यही कारण था, कि मैं नीरू के पास नहीं जा पाता था। फिर भी मेरे लिये नीरू दया की पात्र थी, घृणा की नहीं। उसका चरित्र, उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व उस वेगवती सरिता की भाँति था, जिसमें पड़ने से, डूबने या बहने को कौन कहे, उसके कूलों तक का भी कुछ पता नहीं था। इतना व्यापक लगा मुझे उसका व्यक्तित्व। इसी को सोच कर मैं उससे घृणा नहीं कर पाता था। नीरू मुझसे बहुत समीप रहती थी, फिर भी जब मैं बच्चे को अपने सामने देखता था, तब मुझे पता चलता था, कि नीरू लाचार थी। वह बच्चे को छोड़, कहीं बहुत दूर जा कर सदा के लिये छिप गयी होगी। पर जब बच्चा रोता, तब मुझे अकस्मात ज्ञान होता, कि उसकी माँ नीरू यहीं हैं, मेरे घर से एक फलांग की दूरी पर मैंनेजर की बीबी बन रह रही है। मेरे सामने बच्चे को दूध पिलाने की समस्या दूर हो चली थी। वह मेरे साथ खाना खाने लगा था। यह उसके लिये कुछ अर्थों में हानिकारक सिद्ध हुआ था। उसका पेट बढ़ आया था। डैजी उस`अब पहचान तक नहीं पाती थी। वह उस गरीब बच्चे की भाँति हो गया था, जिसकी माँ उसे गरीब पिता के अंक में छोड़ बहुत दिन हुए मर गयी हो।

शाम का वक्त था। मेरी परीक्षा समीप थी। मैं बच्चे के साथ सड़क पर टहल रहा था। बहुत उदास था। मैंनेजर की कार पोर्टिको से स्टार्ट होकर, मेरी ओर धीरे–धीरे बढ़ कर रुक गये। नीरू ने मुझ से नमस्ते किया।

मैंने बच्चे को पुचकार कर कहा––''नमस्ते करो।'' उसने प्रयत्न अवष्य किया पर पूर्ण सफल नहीं हुआ।

''यह किसका बेबी है ? बड़ा होनहार है।'' नीरू ने हँसते हुए कहा। मिस्टर घोष ने उसका, तुरन्त परिचय दे डाला। वही जाना–माना परिचय––''आरफन चाइल्ड !''

नीरू उसे देख रही थी। बच्चा कार के शीषे को देख रहा था। मैं नीरू को याचकों की भाँति देख रहा था। वे लोग मुझे सिनेमा तक ले जाने के लिये तैयार थे। मैंने स्पष्ट शब्दों में अपनी विवषता प्रकट की। नीरू मुझे बच्चे को साथ ले चलने को तैयार थी। उसी क्षण बच्चे ने रोना प्रारम्भ कर दिया।

नीरू चली गयी। उसके बाद उसने कई बार कहा, कि मैंने उसे कभी भी इस बच्चे के बारे में नहीं बताया।

बच्चे ने उसी क्षण से रोना प्रारम्भ किया था। राम में बहुत देर तक रो–रो कर सो गया। उसका मुंह फूल आया, आँखें सूज गयी थीं। चम्पा उसके साथ चुपके से बहुत रोयी थी।

प्रातःकाल उठते ही मैंने उसको देखा, और सोचने लगा, बच्चा इतना क्यों रोया ! क्या उसने नीरू को पहचान लिया था ? नीरू तो उसे पहचान नहीं सकी। वह उस अंष का महांष थी। उसने उसे कम–से–कम नौ महीने अपने हृदय में रक्खा होगा। क्या उसने उसे अपने अंक में रख कर उस स्वप्निल–जगत की छाया नहीं देखी होगी, जहाँ पति का अभाव पूर्ण हो सकता था ? नीरू ने सब कुछ किया होगा ! सब का अनुभव किया होगा ! उसे सब–कुछ याद होगा ! पर वह इतने षीघ्र बदली, इतने षीघ्र उसकी पलकों से उसकी मातृत्व की गरिमा नष्ट हो गयी। वह बच्चे को नहीं पहचान पायी। बच्चा उसे पहचान कर, नहीं, उसकी आवाज पहचान कर, नहीं, बल्कि उसे मैंनेजर के साथ देख कर,षायद रोया था। सम्भवतः वह उस दिन माँ से मिल कर उसके सामने मचला था, उसके सामने उसने अपना क्रोध प्रकट किया था, जिसका तारतम्य उसकी उस सुधि के साथ टूटा था जब उसने पुनः अनुभव किया होगा, कि उसकी माँ मर गयी। बच्चा थका हुआ सो रहा था। चम्पा उदास मेरे कमरे में नाष्ता देने आयी। बच्चे को देख उसने स्पष्ट शब्दों में कहा, कि 'मैंनेजर की बहू की नजर बच्चे को लग गयी है।'

मैं चम्पा की सरलता पर अकारण हँस पड़ा। मेरी यह हँसी बहुत अर्थभरी थीं, क्योंकि यह एक लम्बी नीरवता के उपरान्त फूटी थी। चम्पा गम्भीर थी। वह अपने विष्वास पर अटल थी। मुझे रह–रह कर हँसी आ रही थी।

''आखिर फिर क्यों बच्चे ने कार के पास से लौट कर ही रोना आरम्भ किया ?'' उसने रूठे हुए स्वर में पूछा।

''कौन जाने, वह किसी को पहचानता हो !'' मेरे मुख से अचानक यह वाक्य निकल पड़ा।

''किसे पहचानता होगा ? आप भी मजाक करते हैं।''

मैं नतमुख होकर बच्चे को देख रहा था। सोच रहा था, कि चम्पा को सब बातें बता दूं। बच्चे का सूखा मुंह भी यही राय दे रहा था। पर नीरू की स्थिति मुझे रोक रही थी।

मैं चम्पा के समीप, एकदम निकट पहुँचा, और धीरे से बोला––''बच्चा मैंनेजर की पत्नी को पहचानता है।''

चम्पा ने मेरी बात का विष्वास नहीं किया। वह जहाँ थी, वहीं खड़ी रही। उसने इसे एक मजाक मात्र समझा। मैं बाद को सोचने लगा, 'चलो, अच्छा ही हुआ, चम्पा मेरा तात्पर्य न समझ सकी !'

\+ + +

परीक्षा बिल्कुल समीप थी। मेरी फीस दाखिल हो चुकी थी। बस, यही मेरी एक पहचान थी, कि मैं एम0 ए0 प्रथम वर्ष का विद्यार्थी हूँ। मैंने सोच लिया था, कि परीक्षा में बैठने से क्या लाभ ? मुझे कुछ भी पता नहीं था। मैं डेविड के कमरे में बैठा इसी विषय पर बात कर रहा था। वह मेरी परेषानी का कारण पूछता रहा; पर मैं उसे खुले शब्दों में नहीं बता पाया। यह मेरा पाप और निर्बलता दोनों हो सकती थी। डेविड मुझ से अधिक क्लास के लेक्चर्स में नहीं पहुँच सका था। उसने मुझसे अधिक, बहुत अधिक समय नष्ट किया था। मैंने समय को चिन्ताओं और परेषानी में बिताया था; किन्तु उसने मस्ती में अपने नित्य के दिनचर्या में, हँसी–खुषी में।

मैं जब किसी वस्तु को देखता, तो उसी पर सोचता–सोचता किसी अतिन्द्रियजगत में पहुँच, रुक कर, थम कर विश्राम करने लगता था। परन्तु जब डेविड किसी वस्तु को वाह्य रूप से देखता, पैसा देता, उसके साथ 'जीवन का आनन्द' उठाता खूब ठाट से, गीत गा–गा कर। फिर भूल जाता, और झूमता हुआ शहर के एक कोने से दूसरे कोने पर थोड़ी देर में ही पहुँच जाता। उसमें प्रगति थी और मुझ में मात्र गति ही। सम्भवतः यह प्रगतिषील व्यक्तित्व उसने 'लिली' से पाया था।

वह परीक्षा में बैठने को तैयार था, और स्पष्ट षब्दों में मुझे उत्साहित करता हुआ कहता था, कि साहित्य जवानों का विषय है, उसे पढ़े की क्या आवष्यकता ? उसके अतिरिक्त अध्यापकों तक अपनी तगड़ी पहुँच भी थी ! वह मुझे परीक्षा में बैठने के लिये कह रहा था। मुझे कुछ साहस हुआ। चम्पा ने भी बहुत उत्साह बँधाया।

मैंने अपने नोटस आदि सँभाले। पढ़ते–पढ़ते जिस समय मुझे नीरू का प्रथम व्यक्तित्व याद आता था, उस समय मुझे बहुत उत्साह मिलता था। मेरी पढ़ाई की गति बहुत बढ़ जाती थी। मैं बहुत गम्भीर हो कर पढ़ता था। नीरू का दूसरा व्यक्तित्व मुझे आलोचक बना देता था। मैं उत्साहित हो कर आलोचना पढ़ने लगता था। जब मैं पढ़ाई समाप्त कर बच्चे के पास जाता तो अकारण ही मेरे मुंह से यह वाक्य निकल पड़ता––''फ्रेलिटी दाई नेम इज वोमन !''

डैजी का व्यक्तित्व मुझे भावात्मक जगत में पहुँचाने की क्षमता रखता था, और मैंने काव्य का 'रोमांटिक पीरियड' बहुत षीध्र पढ़ डाला।

मुझे परीक्षा की इस तैयारी–काल में मेरे जीवन में आयी प्रत्येक नारी के चरित्र से, कल्याण, शक्ति, सौन्दर्य, अनुभूति, साहस, इत्यादि बहुत–कुछ मिला। मुझे सब से सहायता मिली। मैंने डेविड के साथ परीक्षा दी। पर्चे अच्छे हुए। मैं परीक्षा से मुक्त हो गया। अब डेविड के साथ परीक्षा दी। पर्चे अच्छे हुए। मैं परीक्षा से मुक्त हो गया। अब डेविड मुझ से हठ कर रहा था, कि मुझे उसके साथ नित्य शाम को रहना होगा। वह मुझे भी अपने खर्च का हिस्सेदार बनाना चाहता था। वैसे वह इस पर भी तैयार था, कि मुझे खर्च का कोई अंष भी नहीं देना पड़ेगा। मैं उससे स्वीकृति या अस्वीकृति का उत्तर नहीं दे पा रहा था। उसके सामने जब कभी बच्चे के प्रति अपनी जिम्मेदारी की बात कहता, तो वह मुझे फटकार कर पूछता––''इस तवालत को तुम ने अपने सिर क्यों मोल लिया ?''

मैं चुप रह जाता था। वह मुझे बच्चे को 'आरफन–हाउस' में छोड़ आने को कहता। मैंने इस बात को चम्पा के सामने रख कर पूछा। उसने आँखों में आँसू भर कर उत्तर दिया––''नहीं।''

डैजी से भी पूछा––उसने कहा––''हाँ ठीक है।''

जब मैं बच्चे के सामने अपने से पूछता, तो उत्तर मिलता, 'नहीं, मुझे ऐसा नहीं करना चाहिये।'

नीरू की नारी भी उसी समय धीरे से कह जाती, 'ऐसा न करना।'

———————

आठ

रात्रि के ग्यारह बज रहे थे। हम और डेविड लिली के बँगले से बाहर निकल रहे थे। लिली अपनी नौकरानी के साथ हम लोगों को सड़क पर छोड़ने आयी थी। लिली में प्यार करने की कितनी क्षमता थी, मैं उसे देख कर, आँक नहीं पा रहा था। लिली–डेविड में कितना प्रेम था, मैं इसे वर्णन नहीं कर सकता।.....

एक बार मैंने डेविड से प्रथम बार पूछा–''तुम लिली से षादी क्यों नहीं कर लेते ?''

डसने लपक कर मेरा मुंह बन्द कर दिया, और कहा––''ऐसा कभी लिली के सामने न कहना !''

मैं कुछ समझ नहीं पाया। वह बड़ी देर तक वहीं सूनी सड़क पर खड़ा मुझे समझाता रहा––''लिली शादी करने के लिये नहीं है। उसके घर वाले इस बात को कभी सोचेंगे तक नहीं। यदि 'लिली' चाहे, तब भी वे लोग इस पर राजी न

होंगे। दूसरी तरफ अगर घर वाले चाहें, तो लिली शादी के लिये तैयार नहीं होगी। वह व्यक्तिगत रूप से विवाह को घृणा की दृष्टि से देखती है। वह शायद विवाह 45 वर्ष के उपरान्त करे।''

मैं चुपचाप डेविड की बात सुनता रहा। मैंने फिर पूछा––''और तुम ?''

उसने स्पष्ट शब्दों में मुझे बताया––''षादी करना सब से बड़ी मूर्खता है, और फिर इस उम्र में। ये दिन आनन्द करने के हैं। न कि जिम्मेदारी का पहाड़ ढोने के लिये। संसार में ईष्वर ने कितने सुन्दर–सुन्दर फूल पैदा किये हैं। हमको चाहिये, हम अधिक–से–अधिक फूलों को सूंघें, उसके सौन्दर्य की प्रषंसा करें। एक ही फूल को पा कर औरों को भुला देना, या औरों की ओर दृष्टि न डालना प्रकृति के विरुद्ध है। हमें फूलों को सूंघते, छोड़ते आगे बढ़ना चाहिये।''

''तो लिली भी उस उद्यान की एक फूल है ?''

''हाँ, एक सुन्दर फूल है। इस समय वह अपने पूर्ण विकास पर है। उसे किसी एक पंजे में बन्द कर लेना सर्वथा अनुचित होगा। वह इतने साज–श्रृंगार के साथ क्यों रहती है ? वह हरदम नयीं क्यों प्रतीत होती है ? इसीलिये कि बार–बार में उसके चारों ओर पागल मधुप की तरह चक्कर मारूँ। किसी एक का हक नहीं है, कि अपने व्यक्तित्व से दबा कर सदा के लिये उसकी प्रगति रोक दे। कौन जाने, लिली किसी दिन इसी प्रकार बढ़ती हुई बादषाह तक पहुँच जाय ! मैं भी किसी फूलों की रानी तक पहुँच जाऊँ। इसलिये शादी कर लेना मेरी दृष्टि में भूल है, पाप है, एक आत्मा की हत्या है ! फिर भी इस उम्र में तो नहीं, बल्कि विवाह की समस्या पर विचार किया जाएगा पचास वर्ष के बाद।''

इतना कह कर डेविड ने 'गुडनाइट' के बाद बिना मुझ से आज्ञा लिये अपने बँगले की राह ली। मैं वहीं मूर्तिवत् खड़ा रहा। 'षादी करना भूल है, पाप है, किसी की प्रगति रोकना है'–डेविड के मुंह से मानों मैं अब भी यही षब्द सुन रहा था। मैं धीरे–धीरे अपने घर की ओर बढ़ा। रात बहुत बीत गयी थी। हाँ, मैंने उस दिन डेविड से एक बड़ी नयी बात सुनी थी।

दूसरे दिन अनायास ही चम्पा से पूछा–''षादी करोगी ?''

उसने गंभीरता के साथ आँखें दिखायी और 'धत्' कह कर वह भाग गई। मैं बड़ी देर तक अपने कमरे में चम्पा के उत्तर की प्रतीक्षा में बैठा रहा; पर वह लौट कर फिर नहीं आयी। मैं सोच रहा था, कि क्या सचमुच डेविड सारी बातें हृदय से कह रहा था ? यदि हृदय से कह रहा था, तो उसके किस भाग से ? 'षादी कहना भूल है, पाप है,' क्या ये उसके अपने विचार हैं ? दूसरी ओर नीरू ने तो सिद्ध किया है, कि शादी करना, किसी के हाथ अपना सब–कुछ न्योछावर कर के समर्पित हो जाना जीवन का परम लक्ष्य है। क्या उसे उद्यान के अन्य मँडराते हुए भौरों से सम्बन्ध नहीं जोड़ता था ? 'क्या उसे पैंतालिस वर्ष तक प्रतीक्षा नहीं करनी थी ?' मैं इस व्यवधान का समझ नहीं पाया।'

इसी उलझन को लेकर डैजी के पास गया। वह डयूटी से आ कर अपने कमरे में सो गयी थी। बहुत देर से सोई हुई थी। मैं उसे जगा नहीं पाया। मैं हास्पिटल रोड़ पर टहल रहा था। सड़क उस वक्त सूनी थी। महिला–विभाग के क्वाटरों से अजीब उदासी निकल कर सड़क पर फैली हुई थी। नर्स–लॉज से नर्सों की टोली सज–धज कर शहर की ओर जा रही थी। सब की आँखों में अजीब नषा था। सब की चितवन में डेविड की बात दोहरा उठती थी, 'षादी करना भूल है, पाप है !' डेविड की समस्त बातें मुझे गूंजती हुई–सी प्रतीत होती थीं। कुछ देर के बाद मैं फिर डैजी के कमरे के पास गया। वह उठ कर कपड़े पहन रही थी। उसने मेरा स्वागत किया–''टहलने ?''

मैंने बैठते हुए पूछा––''जैसा आप कहिये।''

इसके बाद वह हँस पड़ी और षीध्र कपड़े बदल मुझसे सट कर बैठ गयी। मुझे कमरे में अच्छा नहीं लगता था। मैंने बाहर चलने को कहा। मेरे साथ डैजी हँसती हुई सूनी सड़क से चली जा रही थी। मैं काफी चुपचाप चल रहा था।

''आप कुछ सोच रहे हैं ?'' उसने साइकिल रोक कर पूछा।

''हाँ, सचमुच मैं कुछ सोच रहा हूँ।'' मैंने उत्तर दिया।

''मुझे भी बताइये, मैं भी सोचूं। ओह, माफ कीजियेगा, अगर बताने लायक हो तब !'' वह खिलखिला कर हँस पड़ी।

''षादी के बारे में तुम्हारे क्या विचार हैं ?''

''मेरे विचार ! कभी सोचती नहीं। जो नर्स है....''

''हाँ–हाँ तुम्हारे विचार ?''

''मैं शादी–विवाह से सहमत नहीं। यह एक बन्धन हो जाता है। वैसे ही जिस पुरुष से जिस स्त्री को जँचे, जहाँ अकस्मात दोनों एक–दूसरे से खिंच जाय वही ठीक है। वे जब तक एक–दूसरे से मिले रहें, जब तक उनमें एक समता की अलौकिक दुनिया बनी रहे, तब तक वही ठीक है। जब किसी कारण वे एक–दूसरे से अलग होना चाहें, तब उन्हें उसक स्वतंत्रता होनी चाहिये। उनका सम्मान उनके साथ हो। पर ऐसा होता नहीं। जहाँ दो दिलों में एक दुनिया बसाने की क्षमता है, धुन है, वहाँ मेरे विचार से स्वर्गीय ज्योति निवास करती है। और जहाँ एक बार भूल से मिल जाने पर सदा–सदा के लिये वहीं खड़ा रहना है, वहाँ, उस दुनिया में घटाटोप अन्धकार है, घुल–घुल कर मरना है। अन्त में मैं यही कहूँगी, कि

विवाह प्रगति में बाधक है, स्वतंत्रता की भावना को पंगु बनाता है। दो दिलों में जब तक बन सके, तब तक का प्यार सब से पुनीत है। इस प्यार पर किसी प्रकार की मोहर, सील, बन्धन नहीं है। प्रत्येक पक्षी को उड़ने के लिये उन्मुक्त, दूर तक फैला हुआ आकाष होना चाहिये। उसे पकड़ कर किसी एक स्थान पर बैठा कर अपने नियंत्रण में भोजन और सुख देना पाप है।'' मैं डैजी को रोक दिया। वह न जाने किस भावात्मक स्तर से कब से बोल रही थी। मैं कब से उसमें बह गया था––उसके उद्वेग का कूल नहीं था। फिर भी डैजी के विचार में, उसके प्यार और विवाह की व्याख्या में कितना भोलापन, स्वाभाविकता और सार्थकता थी, कि मैं स्तब्ध रह गया। मैं उसके सामने उसके बौद्धिक–विकास की प्रषंसा करने लगा। वह हँस रही थी। वह उसने स्पष्ट शब्दों में कहा––''मैं आप से प्यार करती हूँ; पर मैं विवाह को घृणा करती हूँ।''

यह कह कर वह मुझ से चिपक गयी। मुझ से नारी–सुलभ व्यापार के साथ अपनी स्पष्टता तथा धृष्टता के लिये क्षमा माँगने लगी। मैंने उसे कस कर पकड़ते हुए देखा। उसकी सराहना की। उसकी पतली–पतली आँखों में पढ़ रहा था, 'प्रत्येक पक्षी को उड़ने के लिये उन्मुक्त, दूर तक फैला हुआ आकाष चाहिये। मैं आप से प्यार करती हूँ; पर मैं विवाह से घृणा करती हूँ।'

मैं बहुत देर तक डैजी के साथ था। वह मेरे साथ थी। मैंने चलते समय 'डेविड' का उससे परिचय दिया। उसने बहुत प्रसन्नता प्रकट की।.....

\+ + +

चम्पा को कहानी बहुत पसन्द थी। मैं जब मोटी–मोटी किताबें पढ़ता और वह अकारण, या सकारण मेरे कमरे में आती, तब हठ करके कहानी सुनती थी। मैंने बहुत से किस्से उसे सुनाये थे। मैंने उससे उस दिन पूछा था, 'षादी करोगी ?' और वह 'धत्' कह कर भाग गयी थी।

मैं पढ़ रहा था। वह लजाती हुई मेरे कमरे में आयी। अब वह पहले की चम्पा नहीं थी। उसमें बहुत–कुछ और बातें न जाने कहाँ से आ गयी थी।

''चम्पा, अब किस्सा नहीं सुनोगी ?''

''क्यों नही ? पर आप अब थोड़े ही सुनायेंगे।''

मैंने प्यार से कहा–''सुनो, एक जंगल था। उसमें एक बहुत बड़ा पीपल का पेड़ था, बहुत बड़ा, षायद इतना बड़ा पेड़ तुमने देखा भी न हो।''

''हाँ–हाँ, कहिये, मैंने जरूर देखा होगा।'' वह मुस्करा उठी।

''हाँ, उस पीपल पर चिड़ियों का बसेरा था। चिड़ियाँ हर जाति की थीं। दो डालों पर चिड़ियों के चार अलग–अलग घोंसले थे। प्रत्येक चिड़िया अपने घोंसले में अकेली थी।''

''अकेली थी ?'' चम्पा ने टोका।

''हाँ–हाँ, अकेली थी।''

''अकेली चिड़िया घोंसला नहीं बनाती।'' उसने तर्क किया।

''हाँ–हाँ सुनो तो। एक दिन एक नर पक्षी ने एक मादा पक्षी से पूछा––'शादी करोगी ?' वह चिड़िया कई दिनों तक सोच–विचार करती रही। पक्षी नित्य उसक पास आता। उसे खूब अच्छे–अच्छे फल खिलाता। दोनों उन्मुक्त जंगल में बिहार करते। चिड़िया क पास एक बच्चा था, जो उसके अपने घोंसले में मिला था। उसने सोचा था, कि उसके शेष जीवन के लिये वही बच्चा अमृतपाथेय होगा, उसका सब कुछ होगा; पर उसने पक्षी को प्यार दिया, खूब प्यार किया। अपने बच्चे को उसने घोंसला से नीचे गिरा दिया, और खूब आनन्द से ऊँचे स्वर से गाती हुई वह नयी शादी करके उस पक्षी के साथ रहने लगी। उसका बच्चा अब भी जीवित है।'' यह कह कर मैं खामोश रह गया।

''यह किस्सा है ?'' चम्पा ने आश्चर्य से पूछा।

मैंने कहा––''और क्या है ? और सूनो, दूसरी चिड़िया बहुत ही भोली थी। उसने कभी भी किसी पक्षी से बातें नहीं की थीं। उसके पास एक दिन एक पक्षी आया और पूछने लगा––'शादी करोगी ?' वह 'धत्' करके भाग गयी। उसने फिर कभी भी पक्षी से नहीं कहा कि वह शादी करेंगी, या नहीं।''

''पक्षी उससे भी भोला था''––चम्पा ने हँसकर कहा।

मैं गम्भीर हो गया। चम्पा मुझ से कहने लगी––''फिर और आगे––''

''हाँ, बाकी बची तीसरी और चौथी चिड़ियाँ। एक दिन इनके भी पास अलग–अलग पक्षी आये। उन्होंने उनसे भी वही प्रश्न पूछा, 'शादी के बारे में क्या विचार हैं ?'

''तीसरी ने कहा, 'मैं शादी से घृणा करती हूँ।''

''चौथी ने कहा, 'शादी करने के लिये मेरा जन्म ही नहीं हुआ।' उसने तर्क करके पुरुष पक्षी को बता दिया, कि प्रत्येक चिड़िया को दूर तक फैला हुआ आकाश चाहिये। वह भी वैवाहिक बन्धन को घृणा करती है।''

''तब क्या हुआ ?'' चम्पा ने पूछा।

''बस, अब तक उन चारों घोंसले की यही कहानी है।''

''मैं इस बिना सिर–पैर की कहानी को कहानी नहीं मानती।''

''अच्छा, चम्पा, तुम किस चिड़िया को पसन्द करती हो ?''

''मुझे पहली चिड़िया पर क्रोध अवश्य आता है; पर दया भी आती है। मैं दूसरी को पसन्द करती हूँ।''

मैंने दौड़कर चम्पा का हाथ पकड़ लिया। वह हँसने लगी।

''दूसरी चिड़िया तुम्हीं हो।'' मैंने गम्भीर हो कर कहा––''मैं भी दूसरी चिड़िया को प्यार करता हूँ।''

''पहली चिड़िया कौन है ?''

''यह न पूछो चम्पा।''

''क्यों नहीं ?''

''वैसे ही।''

''अच्छा, बता दीजिये, तब मैं जानूंगी.....।''

''क्या जानोगी ?''

''कि आप मुझे प्यार करते है।'' कह कर उसने लाज से सिर झुका लिया।

''अच्छा; लेकिन किसी से बताना नहीं।''

चम्पा ने गम्भीरता से सिर हिला कर हामी भरी।

''उस चिड़िया का फेंका हुआ बच्चा यही सोता हुआ बच्चा है, जो अभी तक जीवित है।'' मैंने बच्चे की ओर इशारा करके कहा।

चम्पा ने उठ कर उसे खूब देखा, आँखों में आँसू भर कर देखा।

''और वह चिड़िया कौन है ?''

''यह भी बता दूं ?''

''हाँ।''

''मैंनेजर की पत्नी।''

''अरे, नयी दुल्हन !''

''हाँ, चम्पा।''

चम्पा की बड़ी–बड़ी आँखें फैल कर गोल हो गयीं। उसने अपने होठों को दबा कर अपना सिर थाम लिया, मानो नीरू के नाम पर उसे पाताल–लोक में धँस जाने का डर था।

''मैं फिर जाऊँगी बहूरानी को देखने।'' चम्पा मैंनेजर के घर जाने के लिये तैयार थी। वह शीध्र मैंनेजर के घर चली गयी।

मैं कमरे में अकेला उसकी प्रतीक्षा करता हुआ अपनी कहानी के कथानक को सोचने लगा। 'पक्षी उससे भोला था।'––ये चम्पा के शब्द थे। पक्षी मैं था, मैं सचमुच भोला था। सब–कुछ जानते हुए मैंने क्यों चम्पा से पूछा, कि 'शादी करोगी ?' वह कभी अपने मुंह से 'हाँ', कह सकती थी ? यद्यपि उसके हृदय की नारी प्रति क्षण 'हाँ–हाँ' कह रही थी। चम्पा नारी थी, एक भारतीय नारी। उसका रक्त देहात का था, जो भारतीय सभ्यता का मेरुदंड था। भारत का जहाँ प्यार के अर्थ हैं, घुल–घुल कर मरना, एक स्थान पर आकश–दीप जलाये अपने प्रेमी की प्रतीक्षा करना ! यह वह प्यार नहीं है, जहाँ प्रेमी–प्रेमिका एक चुम्बन के उपरान्त 'गुड बाई' कह कर सदा के लिये एक–दूसरे को भूल जाते है। यहाँ एक दिन में आठ बार विवाह की प्रतिज्ञायें नहीं होतीं।

चम्पा इस अनन्य, एकनिष्ठ प्यार की, इस कथानक की नायिका थी, जिसे भैया, भाभी, मैं, सारा जगत भुलाये बैठा था। सब उससे काम लेते थे; पर उसकी नारी को सभी ने ठुकरा दिया था। उसके आँसू के स्वर को नहीं सुनते थे। मैं सोच रहा था, कि 'चम्पा नीरू को क्यों देखने गयी है ? सम्भवतः वह उसके पाप को आँकने गयी होगी ! मैंने चम्पा को यह रहस्य बता कर भूल तो नहीं की ?' मैं इसी उलझन में पड़ा था; पर सोये हुए बच्चे का सूखा मुंह कह रहा था, 'नहीं।'

मेरे सामने रह–रह कर लिली, डेविड और डैजी के व्यक्तित्व आ–आकर धीरे–से कह रहे थे, 'हम लोग शादी से घृणा करते हैं !'

नीरू और चम्पा का व्यक्तित्व सामने उभर कर दूसरी ओर लज्जा से आरक्त हो जाते थे। एक शादी के नाम पर तर्क करके थूक सकती थी; दूसरी उस नाम पर 'धत्' कह कर लजाती हुई भागती दिखायी देती थी।

चम्पा कमरे में वापस आयी। उसने कहा, कि मैंनेजर अपनी नयी पत्नी के साथ कश्मीर घूमने चले गये। मैं थोड़ा–सा मुस्करा उठा उसकी बात पर। चम्पा आश्चर्य में डूबी हुई थी। उसने सोते बच्चे को अपने अंक में ले लिया, और मुझसे पूरी बात बताने की जिद करने लगी। मैंने चम्पा को एक–एक बात बता दी। चम्पा सब को सुनती गयी।

सहसा भाभी ने चम्पा को पुकारा। वह सुनती हुई भी मानो नहीं सुन रही थी। मैंने कहा––''चम्पा, तुम्हें भाभी बुला रही हैं।''

वह फिर भी बच्चे को बार–बार चूम रही थी। सहसा कमरे के किवाड़ पर किसी ने धक्का दिया। भैया का रौद्र रूप मेरे सामने नाचने लगा। चम्पा काँप उठी। बच्चा जाग गया। मैं अपनी कुर्सी से उठ गया।

''चम्पा, तुम्हें मेरे घर से निकल जाना होगा, इसी दम, इसी वक्त।'' भैया ने बच्चे को उसके हाथ से ले कर मेरे सामने रख दिया। चम्पा चीख उठी। मैं चुप था। सोच नहीं पा रहा था, कि चम्पा को क्या आज्ञा दी जा रही है ! चम्पा सिसक रही थी। आँसुओं से उसका आँचल भीगता जा रहा था। उन्होंने मुझे फटकार कर न जाने क्या–क्या कहा। मेरे कान में केवल तीन वाक्य गूंज रहे थे, 'तुम्हें शर्म नहीं आती !' 'मैं तुम्हारा अब जिम्मेदार नहीं।' 'बच्चे को मैं अपने घर में नहीं देखना चाहता।'

भैया के ये तीन वाक्य मेरे समस्त–जीवन के फैलाव को समेट कर सम्भवतः किसी अनजाने पथ पर चलाने के लिये थे––मेरे लिये यह ब्रह्मा की तीन रेखाएँ लगीं। मैंने भैया को उत्तर नहीं दिया। चम्पा वहाँ से उठ कर मेरे कमरे के बाहर कोने में मुंह छिप कर रोने लगी। बच्चा पलँग पर पड़ा चीख रहा था। मैं चुप था। मेरा सारा व्यक्तित्व, समस्त चेतनाएँ और अनुभूतियाँ मौन थीं, पंगु थीं।

मैं दौड़कर भैया के पास गया। वे पूरे तौर से आपे से बाहर थे। मैंने पूछा––''चम्पा को आप किस दोष पर घर से निकाल रहे हैं।''

''मना करने पर भी वह क्यों तुम्हारे कमरे में बैठ कर बच्चे को खिला रही थी ?''

''तो मेरे कमरे में बैठना भी उसके दोष में शामिल है ?''

वे चुप थे। फिर कुछ बड़बड़ाते हुए अपने कमरे में चले गये। मैं वहीं अपने कमरे में मूर्तिवत खड़ा था। बड़ी देर तक खड़ा रहा। रह–रह कर चम्पा का सिसकना, बच्चे की चीख–पुकार मेरे कान में आती रही। फिर भी मैं सोच रहा था, न जाने क्या–क्या, अनाप–शनाप। सहसा मुझे लगा, कोई स्पष्ट स्वर में मुझसे धीरे–धीरे कह रहा है, 'भइया, चम्पा का भार अब अपने सिर पर नहीं ले सकते। वे उसे किसी तरह अपने घर से दूर हटा कर, इधर–उधर भटका कर किसी के हाथ लगा देना चाहते हैं। चाहे वह रिक्शा वाला ही क्यों न हो, या चाहे कुल, मजदूर, भिखारी और शराबी ही हो ! अभी तक चम्पा उन्हें नहीं प्रिय थी, बल्कि उसके अठारह घंटे का काम प्रिय था। उसका भोलापन उन्हें प्रिय नहीं था, बल्कि प्रिय था उसका सारी रात जागना, काम करना ! वे चाहते थे कि चम्पा काम करे। हमेशा बारह–तेरह साल पर खड़ी रहे। वह कहीं आगे न बढ़ जाय। चम्पा उन्हें प्रिय है; पर उसकी विकसित नारी उन्हें अप्रिय है। वे कब से एक बहाना ढूंढ़ते थे, वह आज पा गये। बच्चे को खिलाना, चम्पा का अपना दोष नहीं है, बल्कि चम्पा का अठारह वर्ष तक पहुँच जाना दोष है, अपराध है !' फिर मानो इस अनजान कहने वाले ने इतनी बात समझा कर मेरी गति में जीवन डालने के लिये फटकार के रूप में भैया की बात अन्त में दुहरा दी––'तुम्हें शर्म नहीं आती !'

मैं जैसे जाग उठा। मेरे कान में जोर–जोर से चम्पा का सिसकना सुनायी पड़ रहा था। बच्चे का गला रूँध गया था। मैंने चम्पा की ओर निगाह डाल कर उसे सांत्वना दी। बच्चे को सम्भाला। वह रोता हुआ मेरे अंक में चिपक गया। फिर एकदम चुप हो गया। चम्पा आँसू भरी आँखों से मेरी ओर देख रही थी।

''चम्पा, क्या तुम घर छोड़ दोगी ?'' मैंने पूछा।

''और क्या करूँगी बाबूजी !'' उसने आँसू पोछते हुए कहा।

''कहाँ जाओगी ?''

''मैं नहीं जानती।''

''मुझे भी घर छोड़ना पड़ेगा चम्पा।'' मैंने उदास होकर कहा।

''क्यों, आप को क्यों ?''

''भैया घर में बच्चे को नहीं देखना चाहते।''

''बस इसीलिये ?'' चम्पा ने पूछा।

''तुम भी घर से निकाली जा रही हो–जिसका कारण यह बच्चा है, और बच्चे को मैं यहाँ लाया हूँ। इसलिये दोष मेरा ही है चम्पा। तुम निर्दोष हो, एक–दम निर्दोष।'' एक साँस में ही कह गया मैं।

''नहीं बाबू जी, घर आपका है। बच्चा मुझे दे दीजिये, आप यहीं रहिये।''

''चम्पा, तुम कितनी पागल हो !'' मैं उसके समीप था।

''नहीं बाबूजी ! मैं पागल नहीं हूँ। मैं जाते समय बड़े बाबू जी से केवल एक बात कहूँगी।''

''क्या ?''

''मैं कहूँगी, कि वे आपको घर से जाने न दें।''

चम्पा प्रत्येक वाक्य के साथ कितनी ऊँची उठती जा रही थी ! उसका चरित्र कितना निखरता जा रहा था ! मैंने न जाने किस अज्ञात प्रेरणा से दोड़ कर उसे पकड़ लिया, मानो वह उसी समय किसी देव–लोक में उड़ जायगी। मुझे लगा, उसकी कोमल नारी को किसी ने ठोकर मार दी है, उसके सम्मान का स्तर आज एकाएक नीचे गिरा दिया गया है। वह भी दुष्यन्त की शकुन्तला के वर्ग की एक नारी थी, वह जिसकी छाया में अपने अठारह वर्ष भुलाकर, रात–दिन काम करके एक दिन साधिका भाँति वह शरीर त्यागने की कामना किये बैठी थी !

मैंने साइकिल उठायी। उसमें से आवाज आ रही थी, 'मैं आपके बाबूजी द्वारा आपको भेंट की गयी हूँ, मुझे साथ रखना।' मैं उस पर बैठ कर सीधे डेविड के घर पहुँचा। पर मेरी साइकिल मुझे, न जाने क्यों, उससे मिलने को नहीं कह रही थी। मैं साइकिल से लौट कर अस्पताल आया। डैजी से कुछ बातें करना चाहता था। मेरी साइकिल मुझसे कह रही थी, 'तुम ग्रेजुएट हो, नौजवान हो। तुम्हारे नाम से तुम्हारे पिताजी ने अलग पाँच हजार रुपये जमा किये हैं। वे रुपये इसी दिन के लिये हैं। पास–बुक तुम्हारे नीले बक्स में है। उसे सँभालो। तुम क्यों किसी का अपना समझते हो ? तुम्हें स्वयं अपने पथ का निर्माण करना चाहिये, उस पर अकेले चलना चाहिये।'

मैं घर लौट आया। मुझे, न जाने क्यों, विश्वास हो रहा था, कि भैया चम्पा को घर से नहीं निकालेंगे। मुझे तथा बच्चे को भी रहने देंगे। वे उस समय, कौन जाने, क्रोध में ही कह गये हों। पर चम्पा घर से जाने वाली थी। उसने तब से पानी तक नहीं पिया था। बच्चा भी बहुत अनमना था। चम्पा की आँखें फूल कर लाल हो गयी थी।

''चम्पा, रो क्यों रही हो ?'' मैंने पूछा।

''मैं केवल एक बात पर रो रही हूँ, और मैं तब तक रोऊँगी जब तक मेरी आँखों में आँसू हैं।''

''वह कौन–सी बात है ?''

''मैंने अभी बाबूजी से केवल एक भीख माँगी थी; पर उन्होंने मुझे फटकार दिया। कोई बात नहीं। वे मेरी याचना पर नाराज हो गये, इसी का मुझे दुःख रहेगा।'' यह कह कर चम्पा फिर रोने लगी।

मैं समझ गया, चम्पा की याचना क्या रही होगी। फिर भी मैं सुनना चाहता था, कि भैया से उसने क्या कहा था। चम्पा ने रो–रो कर बता दिया।

चम्पा को निकाल देना मेरा परोक्ष रूप से निर्वासन था। मैंने नियति को नमस्कार किया। मैं बुदबुदाया––'भैया चम्पा का भार अपने सिर पर नहीं रख सकते; चम्पा का अठारह वर्ष तक पहुँच जाना ही उसका एकमात्र दोष है।' नियति की फटकारों में मुझे अपनत्व मिला–जैसे मेरे पिता स्वर्ग से आकर मुझे फटकार कर कह गय––'तुम सब–कुछ जानते हो, फिर भी सोचते हो ! तुम्हें शर्म नहीं आती !'

और मैंने भी मकान छोड़ देने का निश्चय किया। स्टेशन के समीप एक छोटा–सा मकान ले लिया मैंने। वहीं जाने का इरादा था।....

गोधूलि की वेला थी। ऐसा लगता था, मानो मानव की पशु–प्रवृत्ति दैत्य बन कर संसार के सौन्दर्य पर अपनी काली तूलिका फेरने जा रही हो ! ताँगे पर मेरा सामान लद चुका था। मैंने पूछा––''चम्पा, तुम्हारे सामान ?''

चम्पा के पास क्या सामान है ? साड़ियों से भरे सन्दूक ? ट्रंक भर कीमती ब्लाउज ? आभूषणों की सन्दूकची ? श्रृंगार–दान ?....नहीं, कुछ नहीं। उनकी अस्पष्ट छाया तक नहीं ! चम्पा के पास स्वयं के अतिरिक्त ओर कुछ न था। वह अकेली थी, निरी अकेली, मानो उसने अभी–अभी अपनी माँ के शव पर मृतक बाप की कापालिक क्रिया करने के लिये जन्म लिया था। कपाल–कुण्डला और चम्पा, इतना तारतम्य !

उसके पास क्या था ? वह कौन निधि लेकर जा रही थी ? उसने जन्म से आज तक क्या बटोरा ? उसके कुल कितने रुपये हुए ? उसे जाते समय क्या इनाम मिलेगा ? उसके पास कुल सामान थे–भाभी का पहना हुआ एक पुराना ब्लाउज, जिसमें से कीमती गोट निकाल लिये गये थे और जो अब तक उसकी देह पर जहाँ–तहाँ मसक चुका था, गले में मैला–सा धागा, उसके किनारे–किनारे गर्दन के चारों ओर पुती हुई कालिख, तैल–शून्य मस्तक पर उसके बिखरे हुए केश, हाथों में काँच की मैली, घिसी हुई पाँच–पाँच चूड़ियाँ, हथेली में बर्तन माँजने के दाग, सुने पैर में बेबाइयों की तीन–चार रेखाएँ, आँखों में आँसुओं का सागर, नाक में एक तिनके का टुकड़ा ! बस यही था उसका राज–कोष ! अठारह घंटे काम करने की क्षमता, घुल–घुल मरने का व्यक्तित्व और उसके कसमसाते अठारह वर्ष। बस, यही उसने जन्म से आज तक बटोरा था।

'तुम्हें घर से निकल जाना होगा।' भैया की यह वाणी उसकी सेवाओं का पुरस्कार था।

'चम्पा ! तुमने क्यों जन्म लिया था ? तुमने क्यों जन्म के साथ अपने माँ बाप को खा लिया ? तुम्हारी आँखों में आँसू क्यों ? बेवकूफ कहीं की ! क्यों नहीं अकड़ कर अपना हिसाब कर लेती ? अगर यह भी नहीं, तो क्यों नहीं जल्दी घर छोड़ देती ? अभी तक रोती है––किसे परवाह है तेरे रोने की ? आँसू लेकर कभी आगे नहीं बढ़ सकती। चलते समय भैया के घर में आग क्यों नहीं लगा देती ? चम्पा ! चम्पा ! तुम में इतना भार ? तुम इतनी अडोल ! तुम्हें मेरा ताँगा नहीं ढो सकता।' मेरे दिमाग में बवण्डर था। वह तब भी रो–रो कर कह रही थी––''बाबूजी, आप न जाइये, मैं बच्चे को लेकर चली जा रही हूँ।''

''हाँ, ठीक तो है।'' भैया ने कहा।

''बाबू जी ! इन्हें आप रोकिये, मैं चली।''

चम्पा बच्चे को गोद में लिय फिर–फिर कर मैंनेजर के घर को देख रही थी। अभी तक उनका बँगला सूना था। मैंने देखा वे कश्मीर से नहीं लौटे थे।

अँधेरा हो चुका था। चम्पा बढ़ती जा रही थी। बच्चा उसके साथ अँधेरे में छिपता जाता था।

मेरा ताँगा धीरे–धीरे बढ़ रहा था। ''बाबू जी, जल्दी आइये।'' ताँगा वाला मुझे पुकार रहा था। मैंने एक बार फिर अपने घर को देखा, पिताजी के खरीदे हुये बंगले को देखा, अपना कमरा देखा, भाभी, भैया को देखा। शायद वे लोग रो रहे थे। मैं अँधेरे में बढ़ गया। चम्पा को पकड़ कर जबरन ताँगे पर बैठा लिया मैंने। वह कहीं दूर, न जाने कहाँ, जानेवाली थी। शहर को छोड़ देना चाहती थी। ताँगा अपनी गति में आया। दूर से भैया की पुकार आ रही थी––''अच्छा, सब लौट आओ।.. ..अच्छा सब लौट आओ।'' किन्तु बढ़ता हुआ घोड़ा, बँधी हुई साइकिल, रोता हुआ बच्चा, मूक चम्पा, सभी मूक भाषा में कह रहे थे––''नहीं, लौटने की जरूरत नहीं। आगे बढ़े चलो !''

मेरा नया घर छोटा–सा था। मैंने कैंडिल जलायी, चम्पा को उतारा, सब सामान भी स्वयं ही उतारा। चम्पा उदास बाहर बैठी रही। बच्चा चुप था। मैंने चम्पा को उठा कर नया घर दिखाया। उसने आँसू के धुंधलेपन में देखा। फिर वह आँगन की चौकी पर बच्चे को दूध पिलाती हुई सो गयी। बच्चा उसके अंक में सिर रख कर सो गया। उसकी निद्रा में चम्पा की सिसकियाँ उसकी साँस के साथ ऊपर उठ आती थीं। मैं बाजार से पूड़ियाँ लाया। फिर मैंने चम्पा को जगाया। उसने पूड़ियों को छूआ तक नहीं। सब उसी प्रकार सो गये, मानो चम्पा सचमुच कपाल–क्रिया कर के लौटी थी। पूड़ियाँ न जाने कहाँ चली गयीं। बत्ती न जाने कब जल कर बुझ गयी।

दूसरे दिन मैंने सब आवश्यक वस्तुयें खरीदकर अपना घर बसा लिया। चम्पा की आँखें अभी तक सजल थी। मैं इसका कारण नहीं जान सका। चम्पा मुझे उदास दृष्टि से देख रही थी। मैं परेशान घर भर में इधर–उधर डोल रहा था। दोपहर होने को था। मैं भोजन बनाने की तैयारी में था। उस समय चम्पा ने पूछा––''बाबू जी, आप क्या करने जा रहे है ?'' और दौड़कर मेरा हाथ बँटाया। उसने शीघ्र ही घर के एक–एक काम को अपना बना लिया। मैं दो–तीन में वाह्य रूप से स्वतंत्र हो गया। पर मैं वास्तव में बँध गया था। चम्पा को अकेला छोड़ कर मैं कहीं जा नहीं पाता था। मेरा डेविड और डैजी से मिलना बहुत आवश्यक था।

मेरा उस दिन से अपना नया जीवन एक नये स्थान से आरम्भ हो रहा था। मैं जीवन के चौराहे से उधर मुड़ा था, जहाँ का सब–कुछ अपरिचित था। मैंने डेविड से भेंट की। सब बातें कहीं। वह उदास सब ध्यान से सुनता गया। पर सुनकर उसने मुझे फटकारा नहीं, बल्कि प्रोत्साहन दिया। डेविड को मैंने उस दिन अपना सच्चा साथी समझा, जिस दिन उसने अपने पिता की सहायता से मेरे मकान में बिजली मुफ्त में लगवा दी। वह मुझे हर प्रकार की सहायता देने को तैयार था। कई बार मेरे घर आता। मुझे उत्साह देता। उसने मेरे कार्य को उचित कहा। वह घंटों मेरे घर बच्चे को खिलाता।.....

डैजी ने जिस दिन मेरी नयी कहानी सुनी, वह बड़ी देर तक हँसती ही रही। उसने मुझे 'रोमांटिक' कहा। जिस दिन उसने मेरे घर आकर मेरे साथ चाय पी, तब उसने मुझ 'जिम्मेदार व्यक्ति' कहा।

मैं अपने छोटे घर में प्रसन्न था। जब मैं चम्पा के अंक में बच्चे को सोता देखता, तो मुझे सन्तोष मिलता था। जब मैं चम्पा को साफ, नये कपड़ों में देखता था, तो मुझे हर्ष और अभिमान होता था।

———

नौ

चम्पा बच्चे का अंक में लिये स्टेशन की ओर देख रही थी। शायद कोई एक्सप्रेस ट्रेन आने वाली थी। चम्पा को यह दृश्य देखना, विशेषकर दूर के मुसाफिरों को देखना बहुत प्रिय लगता था। वह बच्चे से बातें करती, उसे आयी हुई गाड़ी को नित्य दिखाती थी। यही उसका मनोरंजन था। वह घर के सामने खड़ी गाड़ी की प्रतीक्षा कर रही थी। बच्चा और वह, दोनों निर्निमेष दृष्टि से स्टेशन की तरफ देख रहे थे।

''क्या देख रही हो चम्पा ?'' साइकिल से उतरते हुए मैंने पूछा।

''एक्सप्रेस आने वाली है, बाबू जी।'' उसने उसी ओर देखते हुए उत्तर दिया।

''पगली कहीं की !'' मेरे मुंह से निकल गया।

वह खिल–खिला कर हँस पड़ी। बच्चा भी मुस्करा उठा। उस दिन की ट्रेन भरी हुई आयी। मैं भी सड़क पर उतरे हुए यात्रियों को देखने लगा। हम लोग हजारों मुसाफिरों की भीड़ को चकित होकर देख रहे थे। चम्पा उस भीड़ को ऐसे देख रही थी, मानो वह किसी परदेशी के आने की प्रतीक्षा में हो। शाम हो चली थी। मेरी दृष्टि सहसा मैंनेजर की कार पर पड़ी। मैं सतर्क हो गया। वह रेंगती हुई सड़क पर आ रही थी।

''मैंनेजर काश्मीर से आज लौट आये हैं।''

''कहाँ ?'' चम्पा न उत्सुकता से पूछा।

मैंने कार की ओर इशारा किया। पिछली सीट पर मैंनेजर तथा नीरू बैठे थे। चम्पा बच्चे को अंक में लिये उनकी ओर अपलक देख रही थी। सहसा नीरू ने मुझे देखा। उसने प्रसन्नता से कार रुकवा दी। वह मुझे कार में बुलाने लगी। मैंने बढ़ कर नमस्ते किया। चम्पा बच्चे को लिये वहीं खड़ी थी। मैंने अपनी छोटी–सी कहानी संक्षेप में ही उन्हें सुना दी। जीवन–पथ पर चले हुए एक पग के चिह्न को दिखा दिया। नीरू कार से नीचे उतर कर मेरा घर देख रही थी। फिर उदास बच्चे को चम्पा के अंक में देखने लगी। सहसा नीरू बहुत उदास हो गयी। उसका दबा मातृत्व शायद जाग उठा था।

''आनन्द से थीं न ?'' मैंने हँसते हुए नम्रता से पूछा।

''फिर मिलूंगी।'' नीरू कार में जा कर बैठ गयी।

चम्पा कार को दूर तक देखती रही।

''तुम्हारी माँ काश्मीर गयी थी; तुमने नमस्ते नहीं किया उनसे ?'' चम्पा ने प्यार करते हुए बच्चे से कहा। मैंने चम्पा से कहा–''किसी दिन तुम किसी के सामने न कह देना।''

दूसरे दिन दोपहर के समय एक कार मेरे दरवाजे पर रुकी। चम्पा ने मुझे बताया, नीरू आयी है। मैंने नंगे पैर नीरू का स्वागत किया। ड्राइवर मुझे पहचान रहा था। वह वही व्यक्ति था, जो एक दिन नीरू को उस घर से 'पेराडाइज' में ले जाने के लिये आया था। उसने मुझे नमस्कार किया। नीरू मेरे घर में आयी। चम्पा बच्चे को लेकर एक कमरे में छिप गयी थी। मैंने चम्पा को पुकारा।

''यही चम्पा है।'' मैंने उसका परिचय दिया।

''और ये आपके बच्चे हैं ?'' नीरू ने बच्चे को अपने अंक में लेते हुए कहा।

चम्पा को मैंने देखा। वह भय से पीली हो रही थी। उसे भय था, नीरू अपने बच्चे को वापस न माँग ले। नहीं तो उसकी पूर्ण संख्या नष्ट होकर इकाई हो जायगी। चम्पा कितनी भोली थी ! उसे पता था, कि नीरू ने जानबूझ कर बच्चे को त्यागा था। वह उसे भूल चुकी थी या नहीं, इसे मैं नहीं कह सकता था। पर हाँ, इतना विश्वास था, वह बच्चे को प्यार करती थी। शायद पहचानती भी थी; लेकिन अभी माँ कहलाने से घृणा करती थी। उसका कौमार्य बच्चे के छोड़ने से लौट आया था। वह आगे बढ़ कर, माँ बन कर पीछे लौट आयी थी। फिर कुमारी बन गयी थी। अपना पथ स्वयं निर्माण किया उसने।

बच्चा नीरू के अंक में जाने से हिचक रहा था। वह घूरता हुआ नीरू के मुख को देख रहा था। नीरू उसे प्यार कर रही थी। वह सहसा मुंह बढ़ाकर उसे चूमने जा रही थी। बच्चा चिल्ला उठा। वह चम्पा की ओर कूद पड़ने वाला था। चम्पा ने उसे सँभाल लिया। वह भयभीत चम्पा से लिपट गया। उसने अपना मुख उसके वक्ष में छिपा लिया।

नीरू मेरे साथ चारपाई पर बैठी थी। मुझे बहुत आश्चर्य तथा आनन्द मिल रहा था। नीरू उस समय मेरे ऊपर बड़ी स्नेहमयी दृष्टि डाल रही थी। मेरा हृदय न जाने, किन–किन रसों के उद्रेक से भर गया था। नीरू मुझे फिर भी पवित्र लग रही थी। उसने अपनी काश्मीर–यात्रा का वर्णन किया। बीच–बीच में इस बाक्य का पुट देती जाती थी––''आपकी तथा आपके बच्चे की याद मुझे बहुत आती थी।''

उसने कई बार आँखों में आँसू लाकर मुझे देखा। पर वह इसके आगे मूक हो जाती थी। मैं भी कुछ पूछ नहीं पाता था। मैं सीधे उसके मुख पर उभरे हुए भावों को देख आश्चर्य कर रहा था। उसने मुझे अपने घर आमंत्रित किया। मैंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। चलते समय उसने बच्चे को फिर देखा। कुछ नोट मोड़ कर उसने चम्पा के अंक में रख दिये। वह चली गयी, चम्पा को और बच्चे को पचास रुपये देकर गयी। वह अपने नारीत्व की स्पष्ट छापको मेरे ऊपर छोड़ कर लौट गयी।

संसार यदि मुझसे पूछे, कि 'क्या कोई नारी अपना मातृत्व भूल सकती है।' तो मैं स्पष्ट शब्दों में उत्तर दूंगा, 'हाँ–हाँ', भूल सकती है।' अगर दूसरे क्षण वही प्रश्न फिर करे, तो मैं उत्तर में कहूँगा, 'नहीं–नहीं, वह नहीं भूल सकतीं ! उसे उसके 'नौ मास' याद दिलायेंगे, उसके पालने, लोरियाँ, बच्चे की एक–एक किलकारी उसे सुधि दिलायेगी। वह कुछ नहीं भूल सकती।'

नारी एक सिन्धु है, हिमकूट है, नीरू है। नीरू का व्यक्तित्व ?––दूल्हन–पत्नी–माता–विधवा–कुमारी–दूल्हन –स्त्री ! एकदम वृत्ताकार ! वह कितनी तेजी से बढ़ कर स्थानों को तय करती है ? वह, न जाने, किस युग से इन पद–चिह्नों को छू कर बढ़ती आयी होगी ! एक स्थान पर कभी नहीं रुकी। सम्भवतः वह अपने किसी चरण–चिह्न को छूना चाहती है। क्या पर कभी ऐसा हो सकता है। संसार आगे बढ़ता है, पीछे नहीं लौटता। लेकिन कभी–कभी बहुत आगे बढ़कर, अपने अतीत को मुड़कर देखता है एक आतुर–व्याकुल दृष्टि से; किन्तु जिसमें भय का पुट अधिक रहता है। नीरू इसी संसार की एक इकाई है, महान इकाई है।

दूसरे क्षण मैंने चम्पा के विषय में सोचा। और इन्हीं तर्को को दुहराया। मेरे बौद्धिक व्यक्तित्व के दो भाग हो गये–एक ही धारणा थी, कि चम्पा नीरू से बहुत दूर है। दोनों के व्यक्तित्व में महान व्यतिरेक है। दोनों एक नदी के दो किनारे हैं। एक रूढ़ि है और दूसरी प्रगति। एक अग्नि है और दूसरी राख, बुझी हुई, फेंकी हुई। पर दूसरा व्यक्तित्व सोचता है, चम्पा और नीरू एक हैं। दोनों सोचती हैं। दोनों के विचार का विषय एक है। दोनों एक ही बात सोचती है। दोनों को भूख लगती है। दोनों हँसती है, रोती है : दोनों स्त्रियाँ हैं––कौमार्य, वधूपन, यौवन, वैधव्य इत्यादि उनके भिन्न–भिन्न चरण–चिह्न हैं। अन्तर केवल इतना है, कि एक केवल सोच कर, रुक जाती है, मन मसोस कर रह जाती है, और दूसरी जो सोचती है, उसे कर डालती है। चम्पा के पास धर्म है। लज्जा, दया तथा सहानुभूमि है। इसी से वह रूढ़ि पर स्थिर है। बढ़ नहीं पा रही है। वह निर्बल हो गयी है। यही उसकी निर्बलता है। नहीं तो दोनों एक हैं। संसार एक है। संसार का प्रत्येक प्राणी अन्धा, लूला, लंगड़ा, धनी, गरीब, पागल तक समस्त मानव प्राणी एक है। वाह्य नियंत्रण और आन्तरिक निर्बलता ने संसार के प्राणियों में पार्थक्य पैदा कर दिया है।

मेरे व्यक्तित्व की यह दूसरी धारणा मुझे बहुत प्रिय लगती थी। मैं इसको लेकर घंटों सोचा करता था। इसका परिणाम यह हुआ, कि चम्पा, नीरू, लिली, डैजी सब मुझे अपनी लगने लगीं, यद्यपि इसका सारा श्रेय केवल चम्पा को ही है। मैं इन्हीं भावनाओं की प्रतिक्रिया को लेकर सोच रहा था, कि चम्पा ने मुझसे कहा––''बाबूजी, आपको नीरा मुखर्जी के यहाँ जाना है।'' वह बच्चे को अपने अंक में समेटे थी।

जाते समय मैंने चम्पा से पूछा––''अकेले तुम्हारी तबीयत लगेगी ?''

उसने निश्चेष्ट स्वर में उत्तर दिया––''बाबूजी, मैं सड़क पर तमाशे देख करती हूँ।''

''पगली कहीं की !'' यह कह कर चम्पा के पीठ पर धीरे से एक चपत मार दी, और मैं आगे बढ़ गया।

अपने बँगले.....नहीं–नहीं, भैया के बँगले के समीप पहुँचते–पहुँचते मुझे ऐसा अनुभव होने लगा, कि मेरा कमरा और मेरी प्रिय बहिन रेखा मुझे बुला रही हैं। मैंने आँख खोलकर अपने कमरे की चिर–परिचित खिड़की पर चिपकाये हुए अखवार की कटिंग को देखा। रेखा नहीं दिखायी पड़ी। शाम का वक्त था। भैया शायद भाभी के साथ कमरे में रेडियो सुन रहे थे। मेरी साइकिल वहाँ रुक–सी गयी। मैंने उसे एक झट के साथ मोड़ दिया। मुझे नीरू के घर जाना था, भैया के घर नहीं। मैं आगे बढ़ रहा था, कि किसी ने पीछे से पुकारा––''भैया, ओ भैया !''––मानो रेखा दौड़कर मुझे बुला रही थी।

मैं नीरू के बँगले के सामने पहुँच चुका था।

''भैया, घर चलिये।'' रेखा ने मुझे पकड़ कर सजल आँखों से कहा।

''किसने बुलाया है ?'' मैंने प्यार से पूछा। वह चुप थी, मानों उसका हृदय इतना भर गया था, कि वह अपनी जबान तक नहीं हिला सकती थी। वह नीचे कंकड़ की सड़क देखते हुए आँसुओं से सूखे कंकड़ों को तर कर रही थी।

मैं जानता था, मुझे कोई नहीं बुला रहा है, न भैया और न भाभी। केवल रेखा बुला रही है। यह उसकी व्यक्तिगत मामता है, जो उसे यहाँ पर, नियंत्रण रहने पर खींच लायी है। भोली बहिन थी। वह दस वर्ष की शायद हो चुकी थी। वह घूम–घूम कर अपने बँगले की ओर भी देख लिया करती थी, और बीच–बीच में मेरे कानों में अमृत भी घोल रही थी––''भैया, घर चलिये।''

रेखा मुझे रुला रही थी। वाह्य रूप से नहीं, मेरे आन्तरिक हजार आँखों से आँसू टपक रहे थे। मेरी पूर्ण स्थूलता आर्द्र हो गयी थी। मैं उसके आँसुओं में पिघलता जा रहा था। उसे क्या उत्तर दे सकता था मैं ?

''अच्छा रेखा, मैं अभी आऊँगा।'' मैंने उसे समझाते हुए कहा।

वह मुझे देखती ह ुई बँगले की ओर दौड़ गयी। पोर्टिको से मैंने देखा, नीरू उसी सोफे पर बैठी मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। उसने मुझे उदास पा कर इस उदासी का कारण पूछा। मैं क्या बतलाता ? काफी संघर्ष के बाद मस्तक में छायी उदासी को दूर कर पाया। नीरू और मैंनेजर उसी सोफे पर बैठ कर चाय पी रहे थे। मैं सामने अकेले, बैठा था। मैं भी चाय पीता जा रहा था, नीरू मुझसे बात करती थी। मैंनेजर बीच–बीच में हास्य का पुट देता जाता था। पर मेरा आन्तरिक पुरुष सोच रहा था, 'क्या यही उस दिन वाला सोफा है ? यही वह अपरिचित स्त्री है ? यही वह मैंनेजर है ? और मैं भी क्या उस दिन वाला मैं हूँ ? नीरू उस दिन कितनी भोली लगी थी मुझे ! उसने मेरी समस्त सहानुभूतियों को प्राप्त कर लिया था। लेकिन आज वह कितनी दूर चल कर उसी सोफे पर बैठी है ! पुरुष समझता है, उसने बाजी जीत ली;

अच्छा शिकार मिला। और दूसरी ओर नारी समझती है, अच्छा बुद्धू फँसा ! दोनों एक–दूसरे का छल कर कितना आनन्द मनाते हैं ! हाँ, सारा संसार आनन्द मनाता है। केवल बेकार सोचनेवाला, माथापच्ची करनेवाला ही दुखी रहता हैं ! चाहे जो हो, चाहे घर छूटे, चाहे अपनी परम्परा का तिरोभाव हो जाय और चाहे लोग कितनी ही अँगुलियाँ क्यों न उठायें, खूब आनन्द उड़ाओ। यही दुनिया का तत्व है !' मैं नीरू और मैनेजर को देख–देख कर यही सोच रहा था। नीरू मुझे अजीब–सी लग रही थी, मानो मैं उसे पहले दिन देख रहा था।.....

मेरे न जाने के कारण नीरू भी मैनेजर के साथ टहलने नहीं गयी। मुझे वहाँ केवल बैठना प्रिय लग रहा था। नीरू ने, न जाने क्यों, मुझे अपने सोफे पर बैठा लिया। वह मेरे बहुत समीप से बातें कर रही थी। वह उस वर्गों में बहुत प्रसन्नता से दिन बिता रही थी। वह मुझे भी उसी प्रकार आनन्द–मग्न देखना चाहती थी। पर मैं उसकी जारजेट की साड़ी के अन्दर उसकी शारीरिक स्थूलता देख रहा था, और उस दिन को सोच कर तथा सोफे को देख कर तीनों का समन्वय कर रहा था, कि यही नीरू है, यही उसकी स्थूलता है, यही ड्राइंग रूम है, यही सोफा है, यही पोर्टिको है ! मैंने क्या देखा था उस दिन ? क्या सोचा था ?

''मैंने तुम्हें पहले दिन इसी सोफे पर देखा था।'' मेरे मुंह से अकारण ही ये शब्द निकल पड़ें।

पहले तो वह निस्तब्ध रह गयी; किन्तु फिर साहस करके लजाती बोल उठी ''सचमुच ?''

''हाँ, देखा था।''

''तब तुम बहुत बुरे आदमी हो।'' नीरू ने स्त्री–सुलभ कटाक्ष से मुझे देखा। मैं सोफे के किनारे था। नीरू मुझ से सटी जा रही थी। सम्भवतः क्षण भर के लिये मैं नीरू था, नीरू मैनेजर थी, सोफा वही था.....

''तब आपने उस दिन क्या देखा था ?'' नीरू पुछ रही थी।

मैं चुप था। लज्जा से गड़ा जा रहा था। नीरू मुझे प्यार की निगाह से देख रही थी। मैं एक स्थान पर मूर्तिवत बैठा था।

''बोलिये।'' वह मुझे झकझोर कर पूछ रही थी। मैं बाहर पोर्टिको से सड़क की ओर देख रहा था, कि कौन जाने मेरी ही तरह कोई और व्यक्ति हमें देख रहा हो। पर बाहर सब सूना था। मैंने महसूस किया, रेखा की छाया मुझे बार–बार बाहर देख जाया करती थी।

''आप शादी कर लीजिये।'' नीरू ने, न जाने क्यों, कह दिया।

''किससे ?'' मैं बड़ी चेष्टा के बाद हँस सका।

क्षणभर में मेरे सामने चम्पा, लिली, डैजी का व्यक्तित्व चल चित्र की भाँति नाच उठा। नीरू मुझ से सटी बैठी थी। अब तक वह प्रश्न भी कर रही थी। जब मैंने प्रश्न किया, तो वह चुप हो गयी। उसने मेरे छोटे–से प्रश्न का उत्तर न दिया।

वह मुस्करा रही थी। मैं समझता था, कि नीरू बच्चे के बारे में कुछ कहेगी, मुझसे क्षमा–याचना करे शायद। हो सकता है, अपने मातृत्व को वापस लेने की कुछ सलाह ले। पर मैं प्रतीक्षा करते–करते थक गया। वह न जाने क्या–क्या पूछ रही थी। नीरू क्या सोच रही थी, यह मैं समझ नहीं सका। चलते समय उसने केवल एक मूल्यवान वाक्य कहा––''मेरे लायक कोई सेवा ?''

मेरी इच्छा हुई, कि कह दूं, 'आप अपना बच्चा ले लें।' पर मैं हँसकर बँगले से बाहर निकल गया।

सड़क पर पहुँचते ही उस शुभ्र यामिनी में सचमुच मुझे ऐसा अनुमान होने लगा, कि मेरी छोटी बहिन रेखा सड़क से घर तक स्वयं फैली हुई मुझे बुलाने के लिये पाँवड़े बिछा रही है। मैं खिंचा हुआ न जाने किस अदृश्य प्रेरणा से घर के बरामदे में खड़ा हो गया। भीतर रेखा सिसक रही थी। भाभी कुछ बड़ बड़ा रही थीं। मैं उनके कुछ ही वाक्य को समझ सका। वे कह रही थीं––''भैया पर मरती है। उस भैया पर जान देने चली है, जो अपनी इज्जत को खाक में मिला रहा है ! चम्पी को फूंक दिया जिसने। उसकी इज्जत लूट रहा है। उसका मुंह देखना भी पाप है।''

मैं ही वह पापी भाई हूँ, रेखा जिसकी बहिन है। मेरे ही कारण चम्पा भी घसीटी जा रही है। मैंने उसकी इज्जत बिगाड़ी, मैंने बाहर से सब–कुछ सुना। यह भी सुन रहा था, कि रेखा न जाने क्यों रो रही थी। अपने भैया के कलुषित कर्म पर ! मेरी इच्छा हो रही थी, कि उस उजाली रात में भी कहीं कालिमा ढूंढ़ कर अपने को छिपा लूं। मुझे रेखा कभी न देखे। मैं रेखा को, भाभी को, भैया को कभी न देखूं। पर मैंने, न जाने कैसे, 'रेखा' को जोर से पुकारा। मेरे चरित्र की न जाने कौन–सी पवित्रता बोल उठी। रेखा के साथ भाभी, भैया सब निकल पड़े। मैं अपलक रेखा को देख रहा था। रेखा आँखों में आँसू भर कर मुझे देख रही थी। मेरे कान सुनने को तैयार थे, भाभी–भैया चाहे जो कहते। अब और अधिक क्या कह सकते थे ? उससे कठिन वज्र सरीखे वाक्य शायद संसार में शब्दों–द्वारा बन ही नहीं सकते। पर सब लोग चुप थे। केवल रेखा रो रही थी। मैं बढ़कर उसे शान्त कर रहा था, न जाने किस स्वाधिकार की प्रेरणा से। रेखा मुझसे लिपट कर सिसक रही थी। भैया ने मुझे घूर कर देखा और कटु शब्दों में पूछा––''तुम यहाँ क्यों आये ?''

''रेखा क्यों रो रही है।'' मैं एकाएक बोल उठा। शायद यही मेरा उपयुक्त उत्तर था।

''तुम से मतलब ?''

''यह रेखा के आँसुओं से पूछिये। और अब आप लोगों से और चम्पा से वास्ता ? मैंने उसे फूंक दिया है। उसकी राख पर आप लोगों को फूल नहीं चढ़ाना है।''

भैया ने रेखा को मुझ से झटक लिया। रेखा चिल्ला उठी। मैं कड़ा पड़ गया। भैया ने तान कर मेरे मुंह पर एक घूंसा मारा। मेरी नाक से खून बह कर फर्श पर बरस उठा।

नाक को पकड़े हुए सड़क पर चला आया। धीरे–धीरे न जाने कितने समय में घर लौटा। चम्पा जाग रही थी। बच्चा सो रहा था। चम्पा ने मेरे लिये भोजन परोसा। मैं बिना कुछ कहे–सुने खाने बैठ गया। मेरा मुंह जमीन में झुका हुआ था।

कुछ ही खा पाया था, कि थाली में खून के कतरे गिरते दिखायी दिये। मैं उठ पड़ा।

''आज दावात में अधिक खा लिया है ?'' चम्पा इसी निष्कर्ष पर पहुँच कर थाली के पास गयी। मैं उसमें पानी डालने जा रहा था। उसने देख लिया कि मेरी थाली में खून की बूंदें थीं। वह चिल्ला कर बैठ गयी। मैं हँसने लगा।

''पगली कहीं की ! बिनास तो फूटी है।'' मैंने कहा।

पर चम्पा तर्क कर रही थी–''मैंने पहले कभी बिनास फूटंती नहीं देखी। तुम्हारे कुछ और बात है। बोलिये, बोलिये।'' वह रो रो कर, मुझे झकझोर कर पूछ रही थी। मैं क्या बताता ?

''इक्के से साइकिल लड़ गयी है !'' उसने झट से साइकिल देखी। मैं हँस रहा था। वह मेरे ऊपर नाराज हो रही थी।

''मैं क्या बताऊँ चम्पा ! मुझे चोट लग गयी है।''

''कैसे ?''

''वैसे ही लग गयी। क्या करोगी यह सब पूछ कर ?''

मैं पानी लेकर मुंह धोने लगा। चम्पा सिसकने लगी। रक्त का बहना बन्द हो गया ; किन्तु चम्पा का सिसकना नहीं बन्द हुआ। यदि मैं उसे बता दूं, कि भैया ने मुझे मारा है, तो वह और प्रश्न करेगी। प्रश्न–पर–प्रश्न करके मुझे परेशान कर देगी। और अन्त में उस टूटे हुए स्वर को सुन ही लेगी, जिसे भैया ने मेरी भर्त्सना और अपमान करके छेड़ा है। मैं उसे चम्पा को नहीं सुनने देना चाहता था। और चम्पा शायद वही सुनने के लिये मचल रही थी। उसने मुझे विवश कर दिया। मैंने उसे बता दिया, कि भैया ने अकारण ही रेखा को मुझ से छीन कर मुझसे अलग कर दिया था। संयोग का दोष है। रेखा मुझ से लिपट कर अपने घर वापस ले जा रही थी। यही संयोग है। चम्पा ने शायद कहानी के चरम–सीमा पर पहुँच कर एक लम्बी साँस ली। उसका सिसकना चिन्ता में परिणत हो गया। वह सब कुछ एक क्षण में सोचने का प्रयास करने लगी। और अन्त में वह समस्त घटना उसकी निगाह के सामने नाच–सी उठी। उसने अक्षरशः भाभी के वाक्यों को दोहराया नहीं; पर मेरे सामने सब–कुछ कह डाला। चम्पा कितने जल्दी जीवन की वास्तविकता में, कटु यथार्थ में पहुँच गयी ! मैं उसे देख कर आश्चर्य में पड़ गया। मैंने चम्पा को बहुत समझाया, कि वह गलत सोच रही थी; परन्तु वह गम्भीर होकर किन्हीं दुःखद कल्पना में विभोर थी।

———————

दस

डेविड ने शोक प्रकट करते हुए मुझे सूचना दी, कि मैं प्रीवियस में रोक दिया गया। इस प्रकार की अनुभूति मेरे लिये पहली थी। डेविड भी रोक दिया गया था; पर वह पहले से अधिक प्रसन्न था। वह इसे जीवन–गति का एक शब्द–शून्य ताल बताता था। फिर भी वह मेरी असफलता पर दुखी था। मुझे स्वयं विशेष दुःख नहीं हुआ। हाँ, एक हृदय का कचोट अवश्य अनुभव कर रहा था। चम्पा बहुत उदास थी। वह बार–बार पूछती थी––''अब क्या होगा बाबूजी ?''

मैं कभी अपनी गम्भीरता में, कभी मुस्कान में उसका मूक उत्तर देता था।

डेविड ने कई कप चाय पी डाली। उसने मेरी पीठ पर थपकी दे कर कहा––''अमा, क्या अफसोस करते हो !'' शायद वह स्वयं से कह रहा था। मुझे कुछ भी अफसोस न था। वह मुझे लेकर स्टेशन की ओर टहलने निकल गया। उसने डैजी से मिलने का प्रस्ताव मेरे सामने रक्खा। मैंने कहा––''इस असफलता की खुशी में ?''

उसने बहुत ही स्वाभाविक स्वर से उत्तर दिया––''रोने के हर क्षण को हँसी में परिणत किया जा सकता है। जीवन की सब से बड़ी सफलता यही है।''

डैजी के यहाँ पहुँचने पर पता चला, कि वह अपनी डयूटी पर है। अभी–अभी समय करके आनेवाली है। नौकरानी चाय तैयार कर रही थी। उसने हम लोगों को रोका। डेविड लॉन में चुरुट का कश लेता हुआ टहल रहा था। मैं एक किनारे खड़ा उसकी मस्ती देख रहा था।

इसी समय मैंने देखा, डैजी थकी–माँदी, उनींदी–सी चली आ रही थी। उसने शायद मुझे पहचाना नहीं। सामने आते ही मुझे नमस्ते किया। वह डेविड को उसी क्षण पहचान गयी, पर बात करने की इच्छा से उसने परिचय देने का स्वाँग रचा।

मैंने परिचय दिया। दोनों ने चिर–परिचितों की भाँति एक–दूसरे के हाथ को प्यार से चूमा। दोनों के मिलन में तत्परता तथा गम्भीरता थी। हम लोगों के साथ चाय पी कर उसने थोड़ी देर अपनी अनुपस्थिति के लिये क्षमा माँगी। वह अन्दर चली गयी। डेविड गम्भीर मुस्कान के साथ मुझे देखता रहा। डैजी कपड़े बदल कर बहुत शीघ्र लौटी। वह काम पर से लौट कर और दिन चाय पी कर कम–से–कम दो घंटे आराम करती थी। पर आज मैंने स्पष्ट रूप में देखा, वह अलसायी हुई नहीं थी। वह नव–स्फूर्ति के साथ लौटी थी। डेविड ने बातें की, केवल उसका मानसिक, ऐहिक एवं बौद्धिक स्तर आँकने के लिये। हम तीनों ताँगे से उस स्थल पर पहुँचे, जहाँ से डेविड का खर्च आरम्भ होता था। इतने ही क्षणों में वे घुल–मिल गयी थी। काफी हाउस का सामीप्य, हाउजी में स्वाधिकार तथा उस पर विजय; लौट कर रात के दूसरे शो में डैजी और डेविड पर कुछ ऐसा नशा चढ़ आया। कि दोनों एक–दूसरे को अपलक देख रहे थे। मैं कभी–कभी सिनेमा देखता था। खेल समाप्त हुआ। डैजी डेविड के साथ थी। दोनों को घर जाने की देर नहीं हो रही थी। केवल मुझे ही देर हो रही थी। डेविड ने एक साँस में ताँगे वाले को आदेश दिया––''बाबू जी को पहुँचाओ।'' और उसने अपने पर्स से निकल कर न जाने क्या उसे दे दिया। मैं डैजी को देख कर चल पड़ा। डेविड वहीं क्षण भर के लिये खड़ा रहा। मैंने दूर से उसे फिर देखा, वह किसी अज्ञात दिशा में ओझल हो चुका था।

\+ + +

मुझे कहीं नौकरी ढूंढ़नी थी। मैंने चम्पा से परामर्श किया। चम्पा अभी तक मेरे साथ रह रही थी। शायद वह दुखी थी। एक आग–सी धधक रही थी उसके सीने में। वह उसी में घुल–घुल कर जल रही थी। उसने कहा––''ठीक तो है बाबू जी, मैं खाली समय में स्टेशन पर कुलीगीरी कर लूंगी। आप, हो सके, तो पढ़ना जारी रखिये।

मैंने उत्तर दिया––''पगली कहीं की ! कुली का काम करेगी !''

चम्पा मेरे जीवन के मरु–पथ पर स्वयं चल कर एक नये पथ का निर्माण कर रही थी। मैं जिसे सोच–सोच कर हार जाता था वह उसे हँस–हँस कर सुलझा देती थी। वह मेरे लिये गति थी, मैं उस समय कुछ क्षण के लिये केवल मांस का जीता–जागता लोथड़ा था।.....

मैं नीरू के पास चला। उसने मुझसे किसी दिन कहा था––''मेरे लायक कोई सेवा ?''

मैंने उसके यहाँ पहुँच कर उससे बतायी एक छोटी–सी नौकरी की बात।

उसी क्षण मिस्टर घोष ने अपने बैंक में सवा सौ रुपये की जगह दे दी।

ऑफिस में मेरा काम नहीं के बराबर था। यह नीरू का अहसान था। घोष की मुझ पर विशेष दया थी। इस दया पर नीरू के व्यक्तित्व की छाप थी; उनके स्वयं की नहीं।

इतवार के दिन डैजी और डेविड दोनों मुझे बहुत याद आ रहे थे। लिली पर दया आ रही थी। मैंने उस रात डैजी को उस स्थान पर डेविड के साथ छोड़ा था। दोनों पर क्या प्रतिक्रिया हुई होगी ? मैं इसे सोचते–सोचते डैजी के पास मिलने पहुँच गया। दिन के चार बज रहे थे। काम पर जाने का समय था। मिलते ही उसने बहुत गम्भीरता से कहा––''आई एक्सट्रीमली लव डेविड।'' (मैं डेविड को हद से ज्यादा प्यार करती हूँ।)'' बस इतना ही, या इसके कुछ आगे ?

इस तरह डैजी और लिली ने दोनों ने मुझे कई बार कहा है। पर हाँ, डेविड कितनी सीधी रेखाओं से बना था। डैजी को साथ ले कर वह उसी दिन दूर, बहुत दूर निकल गया था। डैजी जिस बात के लिये कितने दिनों से अनन्त प्रतीक्षा किये हुए खड़ी थी––डेविड का वही प्रथम–चरण था, प्याले,.....किस,.....लव,.....प्रामिजेज.....

मैं बहुत पीछे छूट गया। उसने उस दिन मुझ से बहुत बड़ा, हर प्रकार से बड़ा पुरुष देखा था। दोनों एक ही धातु के बने थे, जो चाहे जब मोड़ कर एक किये जा सकते थे, दोनों अपनी गति में एक हो जाते थे। मुझे जलन हुई, यद्यपि डेविड और डैजी दोनों मेरे प्रिय थे। मैंने भी कमा कर अपनी कमाई देखी; उसे चम्पा के हाथों पर रक्खा, फिर कुछ माँग लिया। डैजी को साथ ले कर मैं भी उतनी दूर चढ़ना चाहता था। मेरे पास अपनी सीढ़ी थी। मैं कई दिन अकेले डैजी के साथ चलने का प्रयत्न करता था, पर मैं काँप उठता था, मेरे पैर भारी हो जाते थे। मैं लौट आता था। उसे कुछ–न–कुछ दे कर ही।

दूसरे महीने का आखिरी सप्ताह था। मैंने चम्पा से खर्च का बजट देखा। रुपये घट रहे थे। मैं चिन्तित हुआ। चम्पा ने हास्य बिखेर दिया। मुझे नीरू रुपया दे सकती थी; पर मैं उसके पास जा नहीं पा रहा था। वह बच्चे को देखने आया करती थी। उसने मुफ्त में सवा सौ रुपये वेतन की नौकरी ठीक कर दी थीं। वह इससे आगे नहीं सोचती थी। नीरू कितनी अच्छी थी ! चम्पा कितनी भोली थी !

मैंने चम्पा से सब बचे हुए रुपये माँगे। उसने निःसंकोच दे दिये।

डैजी शाम को आराम कर रही थी। मैं और दिन की तरह उसके कमरे में बैठ गया। उसे बिजली जला कर देखा। मैंने उसे गुदगुदा कर कहा––''टहलने नहीं चलोगी ?''

उसने सीधे छोटे–से वाक्य में उत्तर दिया––''नहीं।''

मैंने अपना पर्स दिखाया। उसने खोल कर रुपयों को गिना और फिर कहा––''नहीं।''

मैंने उसे प्यार से समझाया। उसने फिर भी कहा––''नहीं।''

मैंने उसे अपना पहला व्यक्तित्व दिखाया, डेविड से पहले का; उसने फिर वही जवाब दिया––''नहीं।''

उसके सतत चार 'नहीं' में मुझे 'हाँ' का स्वरूप दिखायी दिया। मैं उसे उठाने लगा। उसने झटके से उठ कर मुझे फटकारा––''हटो, बेकार परेशान करते हो !''

उसके घृणा, क्षोभ और दुराव को मैंने प्यार से देखा। मैं पर्स वहीं छोड़ कर लौट आया, विजयी–सा लौट आया। मुझे पता नहीं था, कि मेरा अस्त्र, मेरी कमाई, चम्पा का दिया हुआ रुपया, बच्चे के दूध का बजट सब उसी पर्स में था, जिसे डैजी ने बाहर अँधेरे में मेरे पीछे फेंक दिया था।

डेविड मेरे घर आया। उसने सीधे शब्दों में मुझसे कहा––''मैं डैजी को अब तक आठ सौ रुपये दे चुका हूँ। आगे जो कुछ भी खर्चा हुआ हो वह अलग है।''

सुन कर मैं हैरत में आ गया। मेरे सामने मेरा पर्स नाच उठा। उसमें रक्खे चालीस रुपये हँस उठे, और फिर अँधेरे में उड़ गये। डैजी की फटकार याद आ गयी मुझे।

चम्पा चाय तैयार कर रही थी। डेविड को मैंने बहुत शीघ्र विदा किया। वह चाहे जो हो, वह अपने पथ पर आगे बढ़ता जा रहा था। उसमें प्रगति थी, मैं एक जगह खड़ा था स्थिर, जड़ बन कर।

मैंने चम्पा से पूछा––''कैसे काम चला रही हो ?

उसने कहा––''वैसे ही।''

मैंने भी सोचा, शायद कुछ रुपये उसने बचा लिये हों।

मुझमें और डेविड में कितना अन्तर था ! मैं केवल सोचता मात्र हूँ और वह उसे कर डालता है, निःसंकोच निर्भीक हो कर, मैं ऊपर चढ़ते हुए हिचकिचाता हूँ, वह डंके की चोट पर बहुत ऊपर चढ़ जाता है। मैं व्यथा ढोता हूँ; वह आनन्द करता है, मस्ती करता है। हम दोनों एम0 ए0 प्रथम वर्ष में रोक दिये गये; पर वास्तव में मैं रुक गया था। वह तो बढ़ता ही जा रहा था। मेरी अनुभूति चिन्तन को जन्म देती है; और उसकी कार्य–शीलता को। वह हर तरह से सफल है, मैं पूर्णयता असफल। उसने रुपयों को ठीकरा समझा है ; अतः मुझे चारों ओर ठोकरें मिल जाते हैं। वह किसी भी मूल्य पर आनन्द करता है। मेरे जीवन के साथ चम्पा और नीरू बँधी हैं। अब उसके भी साथ लिली और डैजी हैं। मेरे साथी मेरी तरह है; प्रेम पर, मर्यादा पर घुल–घुल कर मरने वाले, आँसू उसके साथी; उसी की भाँति हैं हँसने वाले, ऐंठ कर तने हुए, और बाज से चलने वाले।

एक ओर से आवाज आती है, 'आई हेट मैरेज।' दूसरी तरफ, मूक, बिलकुल चुप, सजल आँखें, घूंघट, अंचल, नत मुंख, अँगूठे से जमीन को कुरेदना, घुल–घुल कर मरना.....

मैं ऑफिस चला गया। मिस्टर घोष के कार्यों में मेरा हाथ बँटाना ही मेरा मुख्य कर्त्तव्य होने लगा। मैंने सोचा, मैनेजर से कुछ रुपये माँग लिये जायँ, उधार ही सही। इसीलिए उनसे बातें करता रहा; पर चलते समय कह नहीं पाया। मैं लौटते समय अकारण नीरू से मिला। उसने रोक कर भर पेट फल खिलाये। सोचा, कि उसी से कुछ माँग लूं। इसी मन्तव्य से उससे बातें करता रहा। वह सब–कुछ पूछती रही, मैं उत्तर देता रहा; पर चलते समय केवल नमस्ते कर के लौट आया।

मैंने घर के बाहर से चम्पा को पुकारा। बाहर के किवाड़ बन्द थे। मैं खोल कर अन्दर गया। केवल बच्चा सो रहा था। चम्पा नहीं थी। मुझे चिन्ता तथा डर मालूम हुआ। मैंने इधर–उधर उसे पुकारा। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था, कि चम्पा घर पर मुझे न मिली हो। उसने कटोरे में मेरे लिये जलपान रख दिया था। मैंने उसे देखा। चम्पा के तमाम कपड़ों को देखा। केवल चम्पा को न देख कर मैं पागल हो उठा। तमाम आशंकायें विभिन्न रूप में मेरे मस्तिष्क में उठने लगीं। मैं उदास होकर बाहर निकला। देहली इक्सप्रेस स्टेशन पर खड़ी थी। मैं दौड़ कर भीतर प्लेटफार्म पर गया। चारों ओर भीड़ में चम्पा को ढूंढ़ा, पर वह नहीं मिली। मैं उदास, शंकित हो कर दायें गेट से निकल रहा था, सहसा बायें गेट से देखा, मानो चम्पा ही अपने सिर पर दो बक्स तथा एक होल्डाल एक साथ रक्खे, तथा हाथ में एक अटैची लिये हुए निकल रही थी। मुझे विश्वास नहीं हुआ। वह बोझे से झुक गयी थी। भीड़ काट कर निकलना उसके लिये कठिन हो रहा था।

मैंने दौड़ कर उसके पास जा कर देखा उसका श्रमित मुख, भीगा वक्षस्थल तथा टेढ़ी कमर। वह अन्त में चम्पा ही थी, मेरी चम्पा, मेरे बच्चे को पालने वाली चम्पा, युवा चम्पा, भैया और भाभी के शब्दों में जिसे मैंने फूंक डाला था। वह वही चम्पा थी। मैंने उसके हाथ से अटैची छीन ली। वह मुस्करा रही थी। ताँगे वाले ने सामान थाम लिया। चम्पा लज्जित हो कर वही खड़ी थी। मालिक ने अपने पर्स से चम्पा को एक अठन्नी पकड़ायी। चम्पा उसे ले कर जैसे भाग निकली। मैं अवाक् रह गया। वह घर पहुँच गयी। मैं वहीं मूर्तिवत खड़ा था। उफ ! चम्पा ने कुलीगीरी की ! क्या वह कई दिनों से ऐसा करती आ रही है ? पर मैंने पहले तो नहीं देखा। देखता कैसे ? और दिन इक्सप्रेस लेट थोड़े ही रहती थी ! वह आज

अचानक मुझसे देखी गयी। चम्पा का इतना आगे बढ़ आना ! क्या उसे कुली, ताँगे वाले, मनचले बाबू लोग छेड़ते नहीं होंगे ? तब उसका चरित्र ? उसकी उन्नीस वर्षों की पुकार ?

मैं लौट कर घर पर चम्पा को डाँटने लगा–''तुम यह काम क्यों कर रही हो ?''

वह हँस रही थी। मुझे भय लग रहा था। उसने मेरे प्रत्येक प्रश्न का उत्तर दिया––''इससे क्या ? खर्चा कैसे चले ? अपना काम चलाने में क्या लज्जा ? फिर मैं तो बर्त्तन माँजने वाली हूँ। हरदम फटकारों में पली हूँ।'' उसके प्रत्येक वाक्य में हास्य का पुट था। मैं चिन्तित हो गया।

मेरे सामने नीरू का व्यक्तित्व आया। वह भी मुझसे कह रही थी––''इससे क्या ? मैनेजर मुझे अच्छा लगा। मैंने बच्चे को फेंक कर शादी की। यह तो अपना व्यक्तित्व जीवन है। मैंने यदि पाप भी किया है, वह भी खुल कर।'' वह गम्भीर थी, अपनी छाया–मूर्ति में।

डैजी का रंगीन व्यक्तित्व आया। उसने भी मुझे फटकारा। डेविड, लिली, भैया, भाभी, सभी फटकार कर चले गये। केवल मैं निश्चेष्ट था, मूक था।

दूसरे दिन ऑफिस जाते समय मैंने चम्पा को चेतावनी दी––''स्टेशन मत जाना।

वह चुप थी। मैं साइकिल से बढ़ गया। मेरे पीछे से मानो आवाज आ रही थी, 'बच्चे के लिये दूध–फल कहाँ से आयेंगे ! मैं चला गया, सब को अनसुना कर चला गया।

शाम को बहुत जल्दी लौटा। चम्पा घर पर ही मिली। वह चिन्तित मना होकर बच्चे को गोद में लिये थी। उसकी तबीयत अच्छी नहीं थी।

बच्चे को अचानक न जाने क्या हो गया था। मैं ऑफिस नहीं गया। नीरू के पास पहुँचा। मैंने उसे बच्चे की बीमारी की सूचना दी। वह कार से मेरे यहाँ आयी। मैं उससे कुछ आर्थिक सहायता चाहता था। पर कहने में असमर्थ रहा। यद्यपि उसने डाक्टर बुलवाया। दवा, दूध, फल–इत्यादि का प्रबन्ध कर दिया, फिर भी मैं उससे कुछ रुपया चाहता था। मैं उसके बँगले पर गया। मिस्टर घोष आ चुके थे। मुझे उस दिन न जाने क्यों भय लगा। पोर्टिको में कार रुकी। नीरू उतर कर झट ड्राइंग रूम से अन्दर चली गयी। मैं कार में बैठा रहा। फिर उतरने लगा। मैंने स्पष्ट रूप से मैनेजर की फटकार सुनी। वह कह रहा था––''तुम्हारी आदत मुझे पसन्द नहीं आ रही है। तुम्हें कभी भी उसके घर नहीं जाना चाहिये ! उसका भी मेरे घर आना मुझे पसन्द नहीं।''

यह फटकार नीरू पर थीं मैं समझ गया इसका लगाव मुझ से है। मैं लौट पड़ा। घर आ कर मैंने अपन को आँका, मैं कितने नीचे गिर रहा था ! यद्यपि मैं स्वयं नहीं गिर रहा था, केवल लोग मुझे ऐसा समझ रहे थे।

तनख्वाह मिलने का दिन था। मैनेजर ने शाम को बुला कर सीधे शब्दों में कहा–''काम करना है, तो सीधे करो ; नहीं तो छोड़ दो। रोमांस और जीवन में बड़ा अन्तर है।''

मैं उसके तीसरे वाक्य को सुनने को तैयार नहीं था। मैं उफन पड़ा। मैंने अपना एकाउट साफ करवाया। त्याग–पत्र दिया। मैनेजर ने शान्त होकर बहुत समझाया; पर मेरा आत्म–सम्मान उस पर थूकने को तैयार था। यद्यपि मेरा क्रोध आधार रहित था; फिर भी मेरी अहमन्यता के प्रत्येक टुकड़े से भीषण चिनगारियाँ निकल रही थीं, जो मैनेजर को समूचा जला सकती थी।

मैंने उसके दिये हुए सम्मान को बार–बार सोच कर वहीं झाड़ दिया। लाख बार इतने दिनों में कुचली हुई कुर्सी को नमस्कार किया। मैंने प्रत्येक अचेतन वस्तुओं का नमस्कार किया। चेतन पर विशेष कर मैनेजर पर घृणा की दृष्टि डाली। मैं अपनी अहमन्यता की बिखरी हुई लड़ियों को बटोर कर लौट आया।

मेरे पास सवा सौ रुपये थे, फिर भी मैं उदास था। सवा सौ, लेकिन दस रुपये का नित्य का खर्च बच्चे को बीमारी के कारण। ओह ! सवा सौ ! डेविड के लिये एक शाम का खर्च। मैंने चम्पा से कह दिया, कि मेरी नौकरी छूट गयी। चम्पा की गम्भीरता बहुत बढ़ गई। फिर भी थोड़ी देर में मैंने उसे उदासी से देखा। वह मुस्करा उठी। मैंने उसे बहुत देर तक देखा। मेरे दिमाग में गूंज रहा था, 'चम्पा.....नारी.....शक्ति.....'

बच्चे की तबीयत ठीक हुई। नीरू उसे फिर देखने न आई और न मुझे ही नहीं याद किया उसने। ठीक भी है। क्यों देखने आये ? क्यों याद करे ?

कभी–कभी मैं यह सोच कर शान्त हो जाता।

पर नौकरी मुझे फिर करनी है। भूख नित्य लगती है, खर्च वही है !

मुझे डेविड द्वारा उसके पिता के पास काम मिल सकता है। पर वह मेरा साथी है। भैया के पास जाऊँ, उनसे माफी माँगूं, तो सब काम बन सकता है। मैनेजर से प्रार्थना करूँ, तो फिर वही काम मिल सकता है। पर मेरा आत्मसम्मान ये सब गँवारा नहीं करना चाहता।

उसी की आशंका ने मुझे रोक दिया। मैं चिन्तित बैठा रहा। चम्पा ने चाय पिलायी।

''क्या करूँ चम्पा ?'' मैंने पूछा––''किसके यहाँ जाऊँ ?''

''उसने हँस कर कहा––''घर पर रहिये, मैं मजदूरी करूँगी।''

'क्या यह चम्पा की राग थी ? या किसी पागल की ?' मैं नहीं सोच पाया !

मैंने फिर पूछा––''घर पर क्या करूँ पगली ?''

वह गम्भीर हो कर अपना काम करने लगी।.....

मैं घर पर बेकार रहने लगा। मेरी सारी चिन्तायें मानों दूर हो गयी। मेरे यहाँ नीरू नहीं आती थी, न मैं ही उसके यहाँ जा सकता था। काफी दिन हुए, डेविड से भी भेंट नहीं हुई। मैं डेविड के यहाँ जा सकता था। अचानक वह अपनी बहिन के साथ मुझे रास्ते ही में मिल गया। वह चर्च जा रहा था। मुझे भी अपने साथ लेता गया। मैंने पादरी का संदेश सुना। स्वयं प्रार्थना की, बाइबिल का पाठ किया। मधुर अँगरेजी टयून की पृष्ठ–भूमि पर धार्मिक भजनों को सुना।

मैंने उठ कर देखा, डेविड की बायें ओर लिली खड़ी थी। दोनों पादरी की ओर अपलक दृष्टि से श्रद्धा–सहित निहार रहे थे। दोनों इस समय मुझे न जाने क्यों दो देह–एक प्राण मालूम पड़े।

प्रार्थना समाप्त हुई। मैंने देखा, लिली अकेले नहीं आई थी। उसके पीछे चार–पाँच युवक लगे हुए थे। डेविड छठवाँ था। डेविड की बहिन भी साथ थी। मैंने काफी देर तक उन लोगों का साथ दिया। लिली के लिये प्रत्येक युवक डेविड था। वह सब के लिये बराबर थी। सब के लिये एक थी। सभी उसे प्रसन्न करने की चेष्टा में थे। उस समय उसका मूल्य कितना था ? शायद नीरू से पाँच गुना। उसी समय मुझे याद आया, 'मैं विवाह से घृणा करती हूँ और जीवन से प्रेम करती हूँ।'

वह सब के बीच में हँसती हुई बढ़ती जा रही थी। मैं लौटने को था। डेविड ने पीछे होकर अपना पर्स सँभाला। फिर उसने मुझसे कहा––''कुछ रुपये तुम्हारे पास होंगे ?''

''रुपये !''

डेविड ने आज पहली बार मुझसे ऐसी माँग की थी। मेरा सिर घूम गया। मेरे पास क्या था ? केवल मैं। मैंने कहा––''चलो, घर पर रुपये मिल सकते है।''

उसने थोड़ी देर सोचा। फिर कहने लगा––''तुम्हें आज मेरा साथ देना है।''

मैं न जाने क्या–क्या सोचने लगा। मुझ घर लौट जाना था, पर मैं डेविड के साथ बढ़ता गया। लिली के बँगले के समीप डेविड अपनी बहिन को मुझे सौंप कर उन लोगों के साथ हो लिया। मैं उसकी छोटी बहिन से बातें करने लगा। उसकी बोली मुझे बहुत प्रिय लग रही थी। वह बार–बार डेविड को बुलाने के लिये आग्रह करने लगी। बँगले में काफी शोर–गुल हो रहा था। हम लोग शंकित हो चुपचाप सुनने लगे। सहसा मुझे ऐसा विश्वास होने लगा, कि ड्राइंग–रूम में मारपीट हो रही है। मैं पोर्टिको पार कर बरामदे में जा पहुँचा। सहसा मैंने सुना, डेविड मुझे बुला रहा था। मैंने दौड़ कर देखा, डेविट पिट रहा था। लिली वहीं खड़ी थी। मेरा खून उबल पड़ा। मैंने डेविड को अपने अंक में खींच लिया। उठते–उठते उसने दो की नाकों पर थप्पड़ मारा। फिर मैं उसे लेकर कम्पाउंड के बाहर निकल आया। डेविड के सिर में चाट आ गयी थी; लेकिन फिर भी वह बहुत प्रसन्न था। वह विजयी–सा प्रतीत हो रहा था। उसकी बहिन रो रही थी। मैंने डेविड से इसका कारण पूछा। वह चुप रह गया। कभी–कभी हँसने लगता और कभी गम्भीर हो जाता था। वह मुझे अपने बँगले तक ले गया; पर उसने कुछ बताया नहीं। मैं बड़ी देर से घर लौट सका।

मकान बाहर से बन्द था। मैं शंका से काँप उठा। अन्दर जाने पर मुझे आँगन में बच्चा अकेला सोता मिला। मेरे पैरों के नीचे की पृथ्वी सरक उठी। इतनी रात्रि और चम्पा घर के बाहर ! मैं आशंका से थर–थर काँपने लगा। मैंने प्रत्येक कमरे की लाइट जलाई, चारों ओर खोजा; पर चम्पा नहीं मिली। उसके तह किये हुए कपड़े कायदे से रक्खे हुए थे। सारा सामान व्यवस्थित था। सब वस्तुओं में चम्पा हँसती हुई जान पड़ती थी। लेकिन वह न जाने कहाँ चली गयी थी। पड़ोस के घरों में तलाश किया। फिर दौड़ कर स्टेशन गया। स्टेशन पर कोई आने–जाने वाली गाड़ी नहीं थी। कुली अपने–अपने स्थान पर आराम कर रहे थे। चम्पा भला यहाँ कहाँ होगी ? तब वह कहाँ मिलेगी ?

मैं कहाँ–कहाँ, कितनी तेजी से दौड़ रहा था ! स्टेशन से मैं फिर एक बार भैया के यहाँ पहुँचा। जी कड़ा कर के बहिन रेखा को मैंने पुकारा। वह सो गयी थी। भैया–भाभी मेरी आवाज को सुन कर अनसुनी कर रहे थे। पर मैं भिखारी की भाँति पुकारता रहा। भैया ने कमरे से उत्तर दिया––''इस समय नहीं मिल सकता।''

उनके उत्तर में घृणा थी, ऐंठन थी। मैंने पूछा––''चम्पा यहाँ आयी है ?''

''यहाँ क्यों आयी ?''

''वह मिल नहीं रही है।'' मैं न जाने क्यों अकारण बोल उठा।

''जाल फेंकने आये हो !'' शायद भाभी के शब्द थे।

मैंने तब मैनेजर के बँगले पर जा कर आवाज दी। जोर से चम्पा को पुकारा। नीरू ने मेरी आवाज सुन कर अपने ड्राइंग रूम से उत्तर दिया––''यहाँ कैसे ?''

सचमुच मैं बेकार यहाँ पूंछने आया था। चम्पा यहाँ कैसे आ सकती है ? मैं लौट रहा था। नीरू ने पोर्टिको में आ कर धीरे से पुकारा। उसने मुझे काँपते हुए पाया। मैंने चम्पा के लापता हो जाने की सूचना दी। उसने कई बार मुझे पकड़ कर झकझोरते हुए कहा––''धबड़ाने की कोई बात नहीं है। चम्पा कहीं गयी नहीं होगी।''

नीरू की वाणी में मुझे सान्त्वना नहीं मिली। मैं अब कहाँ–कहाँ जा रहा था, यह मेरी साइकिल जानती है ! मैं आपे में नहीं था। मालूम होता था, मेरा सिर फट जायगा।

मैं घर लौट आया। पलँग पर अस्त–व्यस्त पड़ गया। आकाश में तारों को भी नहीं देख पा रहा था, बल्कि मुझे दिखायी दे रहा था विस्तृत मरुस्थल में तृषित एवं दौड़ते हुए मृगों की टोली। सब के पीछे उड़ती हुई रेत की आँधी, उसके बीच पड़ी हुई चम्पा। उसने दोनों हाथों से अपनी धोती को समेट लिया था। उसके शरीर का ऊपरी भाग वस्तहीन था। उसके केश धूल–धूसरित पीछे की ओर उड़ रहे थे। आँधी उसे घसीटती जा रही थी। उसके नेत्र रेत के कणों से भरे जाते थे। वह दौड़ रही थी। फिर गिर पड़ती थी, मरु पर बिखर जाती थी। घुटने टेक कर उठती थी और दौड़ने लगती थी। प्यास से उसके नेत्र धँस कर प्रकाश हीन हो रहे थे। होंठ फटे जा रहे थे। वह जोर से हाथ उठा कर किसी को पुकार रही थी; पर इस प्रचंड आँधी में कौन सुने ?

मैं डर से काँप उठा। सिर थाम कर बैठ गया। बच्चे को देखा, वह सो रहा था। उसे पता नहीं था, चम्पा कहाँ है। जागने पर बच्चे को ले कर मैं किस भाँति उस मरुस्थली में चम्पा को खोजूंगा ?

बिना अन्न के मैंने लगातार तीन दिनों तक चम्पा को ढूँढ़ा। आखिरी दिन डेविड से सारा हाल बताया। उसने रेलवे–पुलिस तथा कोतवाली में इसकी रिपोर्ट दिलवायी। डेविड मुझे समझा कर चला जाता। पर मैं सोचता ही रह जाता, 'चम्पा अवश्य स्टेशन पर मजदूरी करने गयी होगी ! वह पागल है ! उसे बच्चे की और मेरी चिन्ता है। अपनी कोई चिन्ता नहीं, अपने उन्नसवीं वर्ष के उभरते, सुडौल व्यक्तित्व का डर नहीं। वह अवश्य इक्सप्रेस आने पर गयी होगी। कितनी आँखें उस पर गड़ी होंगी ! किसी ने समझा होगा, वह अपने परिवार से छूट गयी है। किसी ने देखा होगा, वह भोली देहातिन है, सरल है। अधिकांश लोगों ने कुछ न सोचा होगा। केवल देखा होगा, वह युवती है, सुन्दर है ! किसी यात्री का उसने सामान उठाया होगा। किसी कुली ने जल कर उसे घसीटा होगा। वह गिड़गिड़ायी होगी। रोई होगी। उसने उसे किसी बाबू के हवाले किया होगा। उस सफेदपोश बाबू ने डपट कर पूछा होगा, 'तुम क्यों सामान ढोती हो ?'

उसने रोते हुए कहा होगा–'अब ऐसा न करूँगी।'

उसने उसे खूब देखा होगा, फिर मुस्काया होगा वह। फिर प्रश्नों की झड़ी–सी लगा दी होगी उसने। इधर–उधर का कुछ समझाया होगा, जेल की धमकी दी होगी ! वह रोई होगी, गिड़गिड़ायी होगी। उसने बच्चे की और मेरी दुहाई दी होगी। उफ ! चम्पा घसीट ली गयी होगी। कहीं अँधेरे में बन्द होगी। वह मर गयी होगी, या धुल रही होगी। चम्पा ! मुझे क्षमा करना ! हो सके तो भूल जाना। हाँ, मैं तुम्हें नहीं भूलूंगा, इसके लिये भी क्षमा कर देना। मैं तुम्हें याद कर के रोऊँगा !

————————

ग्यारह

वह स्वर्णिम–अवधि बीत गयी, जिसके अन्तर्गत मैंने विश्वास किया था, कि चम्पा को सूचना अवश्य मिलेगी। उसकी याद अब भी, छाया चित्र की भाँति, मेरे साथ थी, यद्यपि उसकी स्थूलता न जाने कितनी दूर छूट गयी थी।

तूफान में पक्षी ने जिस तिनके का सहारा लिया था, वह भी टूट–फूट कर न जाने कहाँ विलीन हो गया। इसी तिनक पर उसकी बची हुई अहमन्यता का आधार था। वह हाथ मलता हुआ फड़फड़ाया। उसे फिर याचना करनी पड़ी। चम्पा ने बच्चा को पाला था।

मैं बच्चे के साथ उदास अपने बरामदे में खड़ा था बिल्कुल निस्सहाय हो कर। मैंने मैनेजर की कार देखी। नीरू उतर कर मेरे सामने आ खड़ी हुई। मैनेजर मेरे दायें था। मैंने उन लोगों का स्वागत किया। नीरू मुझे उदास, अपलक देख रही थी। मैनेजर ने सहानुभूति से कहा––''मैं आपको फिर जगह दे सकता हूँ।''

मुझे वह स्वप्न–सा लगा। मैंने कृतज्ञता प्रकट की।

नयी जगह पर मैनेजर ने और कृपा दृष्टि रक्खी। मुझे अधिक वेतन मिलने लगा था; पर काम बहुत था। बच्चे को कितनी देर के लिये अकेले छोड़ा जाय ?

मैंने मैनेजर से प्रार्थना की, मेरी तन्ख्वह कम कर दी जाय; पर मेरी डयूटी कम कर दी जाय, या बच्चे को ऑफिस में साथ रखने की अनुमति मिले। मैनेजर ने बड़ी गम्भीरता से मेरी प्रार्थना सुनी। ऑफिस में बच्चे को साथ रखने की आज्ञा दे दी। मैं बच्चे के साथ ऑफिस जाने लगा।

मैनेजर स्वयं बच्चे को अपने कमरे में बुलाता, उसे प्यार करता।

मध्याह्न का समय था। चम्पा की सुधि मुझे रुला रही थी। मैं उसे ढूंढ़ नहीं पाया। इस पराजय पर मेरी आँखें बरस रही थीं। मैनेजर ने मुझे अपने कमरे में बुलाया। पूछा–''क्या इस बच्चे की माँ चम्पा थी, जो गायब हो गई हैं ?''

मैंने सिर हिला कर कहा–''नहीं।''

फिर उसने पूछा, कि यह बच्चा मुझे कैसे मिला।

मैंने काफी देर चुप रहने के बाद उत्तर दिया––''मैं स्वयं नहीं जानता, यह बच्चा मुझे कैसे मिला ! पर हाँ, बच्चा मेरी और चम्पा के दिल का टुकड़ा है। यह किसी का भी हो, लेकिन है किसी इन्सान का प्रतीक ही।'' मैनेजर ने मेरी बात पर विचार किया, खूब सोचा। पर अंत में उसने एक दिन खुल कर कहा––''बच्चे को मुझे दे दीजिये। मैं बहुत आभारी तथा कृतज्ञ रहूँगा आपका। आप इसके बदले में चाहे जो माँग लें।''

मैनेजर की आँखों में आँसू भर आये थे। वह बदल चुका था। मैंने उसे पुरुष होते हुए भी रोता हुआ देखा था। मैं चुप था।

मैं लौट आया। घर पर बच्चे को सुला कर अखबार पढ़ रहा था। मैं नित्य अखबार के प्रत्येक पक्तियों में चम्पा का नाम ढूंड़ता रहा था। मैं उससे पूछना चाहता था, कि बच्चा को दे दिया जाय ! मुंह–माँगा मूल्य देने को तैयार है वह। मैं कहना चाहता था, चम्पा से, कि तुमने कितने आँसूओं से यह पौधा सींचा है। तुमने इस कली को भीषण आँधी–तूफानों में भी जीवित रक्खा है। तुम माँ हो, माली हो, बच्चे की सब कुछ हो। तुम्हें इसके बारे में बोलना है, बतलाना है। अच्छा ही है, अगर बच्चा नीरू के अंचल के पार्श्व में रहे। वह उसकी माँ.....नहीं–नहीं, वह उसकी माँ नहीं है। उसने तो अपने बच्चे को फेंक दिया था। चाहे जो हो बच्चा जी जायगा। हम लोग उसे देख सकेंगे। मैनेजर प्रसन्न रह सकेगा।

मैनेजर सब से छिप कर, नीरू से गुप्त रख कर बच्चे को माँगने आता। वह याचना करता, गिड़गिड़ाता। मुझे दया आ गई। मैंने सोचा, 'मुझे चम्पा को ढूंढ़ना है। मैं अकेला जी नहीं सकता।'

बच्चे को दे दिया मैंने। मैनेजर ने उसे पुत्रवत अंक में भर लिया। मैं चम्पा को खोजने निकल पड़ा।

आगरा, दिल्ली, मेरठ, अलीगढ़, मथुरा, काशी, लखनऊ, कानपुर, आदि संयुक्त–प्रांत के अन्य छोटे–छोटे जिले छान मारे। पर चम्पा, मेरी चम्पा कहीं न मिली।

मैंने कभी सुना था कि देहात की भोली–भाली लड़कियाँ अच्छे–अच्छे शहर के बड़े–बड़े होटल–रेस्ट्राँ में रख दी जाती हैं। और फिर आगे बढ़ा दी जाती हैं। सिनेमा के स्टूडियो में भी रख ली जाती हैं।

तीन मास बीत गये। मैंने पागलों की भाँति फेरियाँ दीं। होटलों में अकारण रहा। वहाँ सचमुच मैंने लड़कियाँ देखीं। मनेजरों से मिल कर औरों का नाम पूछा। पर चम्पा न मिली। बम्बई की सिनेमा–कम्पनियों को लिखा, रुपया खर्च किया। पर चम्पा का कोई नाम–निशान नहीं। मुझे विश्वास हो गया, चम्पा मर गयी। मैंने उस पर खूब आँसू बहाये। उसे भूलने की चेष्टा करने लगा, किन्तु सब व्यर्थ। मैं इधर–से–उधर फिरता रहा, प्रचण्ड आँधी में कटी हुई पतंग की भाँति। आकाश मेरा उपहास करता था। मुझे स्वयं अपने से घृणा होने लगी। अंत में हरिद्वार के पास आ कर मैंने अपने को टटोला, पास के रुपये समाप्त हो रहे थे। मैनेजर के दिये हुए रुपये, बच्चे का मूल्य, सब समाप्ति पर थे।

मैं उसी भयानक देहरा एक्सप्रेस से जंकशन पर उतरा। उदास पलकों को उठा कर मनुष्यों की अपार भीड़ को देखा। दौड़ते हुए कुलियों को देखा। मैं उस समय भी चम्पा को खोज रहा था शायद। पागल ! चम्पा को खोजता है। उस मरुपथ पर उसे क्यों नहीं रहने देता ? वह बाँध कर एक स्थान पर रखने की वस्तु है ? तुम्हारे पास डैजी है, नीरू है, लिली है, रास्ते में आती–जाती और न जाने कितनी हैं। इन्हीं से सन्तोष क्यों नहीं कर लेते ? ऐसा ही था, तो तुमने उसकी क्यों नहीं शादी कर दी ?

चम्पा एक समस्या थी। जन्म लेते समय नहीं, उसके माँ–बाप मर गये तब नहीं, वह तेरह साल तक बर्तन माँजती रही, तब तक भी नहीं। वह समस्या बन गयी चौदह वर्ष की आयु से। फिर पन्द्रह, सोलह, सत्रह और अठारह। भैया ने इस समस्या का हल उसे अकारण घर से निकाल कर किया। मैंने समस्या को अवश्य महसूस किया; हाँ तुमने चिंता भी अवश्य की; पर मैं था अन्य चिन्ताओं के घटाटोप में, शायद अनुभवहीन भी। मैंने हर दम सोचा, यदि मैं संसार की समस्त स्त्रियाँ पा जाता, तो उनसे शायद अपना घर भर लेता। नीरू, लिली, डैजी, चम्पा तो केवल चार हैं। इसके आगे भी न जाने कितनी और भी.....

लेकिन समस्या अछूती रह गयी। मैं जान न पाया। वह बढ़ती गयी। मैंने देखा नहीं, चम्पा स्वयं अपनी समस्या लिये बढ़ती रही। उसका भार वह स्वयं थीं। भोली चम्पा !

उसने स्वयं अपनी समस्या को हल किया। चम्पा को मैंने क्या सुख दिया ? उसे बन्दी करना चाहा उसकी स्वच्छन्द प्रकृति के विरुद्ध। हाँ, यह अन्याय था, अन्याय.....

रेलवे–पुल की प्रत्येक पटरियों ने जैसे मुझे फटकार सुनायी। मैं सुनता रहा। मैं उठ कर इधर–उधर देखने लगा, स्टेशन की भीड़ छँट चली थीं।

\+ \+ \+

मैंने सूने मकान के दरवाजे को खोला। रात हो गयी थी। बत्ती जलायी। फर्श पर देखा, एक लिफाफा पड़ा था। मैंने सोचा, शायद यह चम्पा का पत्र है। डूबते को तिनके का सहारा मिला। मैंने उसे अपने पुरुष की समस्त आर्द्रता से पलकों की छाया में छिपा लिया। खोला खूब सावधानी से। पैड पर लिखा हुआ पत्र। चम्पा की उलटी–सीधी बच्चों–सी हुई लिखावट। मैंने पढ़ा––

बाबू जी, 12 सी0 फोर्ट रोड, दिल्ली।

चम्पा का हाथ जोड़ कर नमस्कार।

मैं अभी जी रही हूँ। यद्यपि मुझे मरे तीन महीने हो गये। मेरे जीने का सुराग केवल यही है, कि मैं आज आपको पत्र लिख पा रही हूँ। मैं कैसे पूछूं, आप कैसे हैं ? बच्चा कैसे है ? पर मैं फिर भी पूछ रही हूँ।

उस दिन मैं स्टेशन पर पकड़ी गयी। और यहाँ चली आई या पहुँच गयी, बस, यही जान लीजिये। कयों और कैसे ? यह न पूछिये। आपकी और बच्चों की बड़ी याद आ रही है। मैं चाहती हूँ एक बार आप यहाँ आ जाइये मेरे सलोने को भी लेते आयें। उसे मेरा आशीर्वाद। उसकी मचलने की आदत को मेरा प्यार। आप अवश्य आइए पत्र पाते ही––मुझे जीता हुआ देखने। बड़े बाबू जी, बहूजी, नीरू, डैजी सब को यथा–योग्य नमस्कार; डेविड बाबू को सलाम, आप मुझे जरूर माफ कर दीजियेगा। भूलियेगा नहीं। आप जरूर आइयेगा, मेरे लिये आइयेगा। पाँच दिन में आज पत्र समाप्त हुआ है।

आपकी––
चम्पी
सी0ओ0 कैप्टिन तेगा सिंह
12 सी0 फोर्ट रोड़, दिल्ली।

मुझे मेरी चम्पा मिल गयी। आज चम्पा कितने दूर से बोल रही है ? किन्तु लगता है, मानो वह मेरे लिए है, एकदम निकट। वह जीवित है। मैं दिल्ली जा रहा हूँ। कौन जाने, वह मुझे देखते ही मर जाय ! मैं उसे क्यों देखूं ? वह जीवित है। कैप्टिन के घर में चाहे जैसे पहुँची हो, मेरा पुरुष हृदय चम्पा को देख कर प्रतिद्वन्द्विता की भावना से जल उठेगा। पर मुझे वह बुला रही है। वह मुझसे क्षमा माँगती है। वह कितनी पगली है ! मैं उसे बता आऊँ, कि क्षमा करने वाली वही है। मैं याचक हूँ। चम्पा मुझे बुला रही है। उसने मुझे ढूंढ़ा, मगर मैं न खोज सका। वह मुझे पा गयी; मैं असफल रहा।

'आप यहाँ अवश्य आइये पत्र पाते ही,'–यह चम्पा की पुकार थी, उसकी आज्ञा थी। रेल की पटरियों ने स्वागत किया। पुल के रेलिंग चुप थे, निर्जीव पड़े थे। मेल चल पड़ी, यह उस झंझा के पार मृगतृष्णा को वेध कर, छक–छक काटती हुई, तीखी सीटी पर आँधियों को चुनौती देती हुई, विस्तृत देश, काल, सभ्यता, सुधि, धर्म, संस्कृति, गरीब, अमीर महल, झोपड़ी को रूढ़ियाँ पार करती हुई––कितने मुसाफिरों को अपनी पीठ पर लादे हुए। मेल, जीवन की प्रतिमा, उसी का सम्पूर्ण रूप, बिल्कुल यथार्थ जीवन उसने मुझे दिल्ली पहुँचा दिया। उतरते हुए उसने दूर से फिर पुकार कर चेतावनी दे दी, 'मैं ही लाती हूँ, मैं ले जाती हूँ मनुष्य का 'वाहन' कोयले, लकड़ी, मशीन के 'ओम्,' 'अहम्', का मैं रूप हूँ।

चम्पा से भेंट करूँगा, किन्तु कैसे ? अपना क्या अधिकार बता कर ? कौन–सा रिश्ता जोड़ कर ? चम्पा कह कर, या अपनी नौकरानी बता कर ? उसने इसका प्रबन्ध कर लिया होगा। कैप्टिन का बँगला होगा। वह काल–सा खौफनाक मकान। कैप्टिन मुझे आँखों निकाल कर देखेगा, मन–ही–मन जल जायगा। तो मैं सीधे वहाँ उतरूँ या किसी होटल में ? पर मुझे तो अपनी चम्पा को ढूंढ़ कर उसे खींच लाना है। किसी का क्या अधिकार उस पर ? कैप्टिन मेरी चापलूसी करेगा–मैं उसे फटकार दूंगा।

मेरा ताँगा रुका। पीले रंग का, कुछ–कुछ भाग हलका नीला, बिल्कुल आधुनिकतम डिजाइन का, बाहर–भीतर सब खुला। मैं आगे बढ़ा। द्वारा पर ही मैंने पढ़ा–'कैप्टन तेगा सिंह' नीचे किनारे 'इन' लिखा था। मैंने सोचा, यहीं होगी मेरी चम्पा ! मेरी ? शायद अब मेरी नहीं। हाँ, कैप्टन तेगासिंह की चम्पा। लेकिन चम्पा ने मन में क्या लिखा है ? इतना अपनत्व क्यों व्यक्त किया है ? वह अब भी.....हाँ, आज भी मेरी है, बिल्कुल मेरी !

मैंने पुकारा––''चम्पा !''

अन्दर कोई स्त्री दौड़ कर, फिर रुक गयी। देर तक मूक रुक गयी। मैंने फिर पुकारा ''चम्पा !''

वही रुकी हुई स्त्री मानो उतनी देर तक अपने योगबल से समस्त शक्ति को संचित करते मेरे सामने, दौड़ कर आ पहुँची। पागल की भाँति, मृग–शावक–सी !

''मेरे बाबू जी !'' उसने चिहुँक कर कर मेरे बढ़े हुए दोनों हाथों को कस लिया। अपने समस्त स्त्रीत्व से मेरे पुरुष को देखा। वह एक कोमल कली और मैं कठोर शिलाखंड, नीरस, कठोर !

वह ठगी–सी सुधि को कोमलतम लहरियों में डूबती हुई चित्र–मूर्ति–सी मुझे अपलक देखती ही रह गयी।

मैंने भी उसे देखा आरम्भ से अंत तक, और फिर अंत से आरम्भ तक। कुछ कह न सका। चुपचाप देखता ही रह गया।

वह भी मूक थी। वैसी ही खड़ी, मानो वह फिर स्थिर हो गयी। उसके पाँव मानो सूज गये थे। वह लुंज हो गयी थी। चम्पा–शक्ति की प्रतीक, मुझे बल देने वाली, जीवन देने वाली, चम्पा मेरे सामने सचमुच जड़पदार्थ–सी खड़ी रह गयी। मैंने उठ कर उसे स्पर्श किया, जिलाना चाहा शायद।

सहसा भीतर से निकल शायद वही कैप्टिन तेगा सिंह आ गया। दोहरे बदन का युवक, बिल्कुल मुश्किल से अट्ठाइस वर्ष का, कटी हुई मूंछें, गोल मुंह, उभरी हुई तेज आँखें, स्थूल ललाट, तेज कर्कश आवाज में बोलने वाला। उसने मुझे बुलाया––''अन्दर आइये।''

चम्पा वहीं रुकी रही, वह हिली तक नहीं। कैप्टिन साहब ने स्वयं मेरे सामने आ कर मेरा स्वागत किया। मुझे वह मूर्ति काल–सी लग रही थी। मेरी इच्छा हुई, कि मैं फटकार दूं। एक चाँटा जोर से मार दूं। चम्पा को उसी लौटती हुई गाड़ी से लौटा लूं।

लेकिन मैं चम्पा को छोड़ कैप्टिन के साथ अन्दर गया, बिल्कुल सामने से दायीं ओर उनके ड्राइंग–रूम में। मैं बैठ न पाया। दौड़ कर, चम्पा का हाथ पकड़ कर बुला लाया उसे। मैंने उसे अपवित्र कर दिया छू कर। मैंने अपने हाथ को देखा। उसमें से रक्त नहीं बह रहा था––कैप्टिन बैठा था, निश्चेष्ट भाव से। मैं चम्पा को देख रहा था। वह खड़ी थी, नीचे देखती हुई ठगी–सी।

''आप इनके कौन हैं ? कैप्टिन ने मुझसे प्रश्न किया।

''मैं ?'' मेरे मुंह से बरबस निकल गया।

''जी हाँ !''

पर मैं बिल्कुल चुप खड़ा था। सचमुच मौन ही मेरा उत्तर था। मैं चम्पा का कौन था ? चम्पा अवश्य थी बहुत–कुछ; पर मैं अपने व्यक्तित्व की छाया तक उस पवित्र मूर्ति पर डाल कर उसे दूषित नहीं करना चाहता था। मैं चुप था।

कैप्टिन ने अधिक न पूछा। वह हँस कर रह गया। कहीं वह मुझे और कुछ न समझ ले; अतः मैंने कहा––''मैं चम्पा का कोई नहीं.....''

''बाबू जी ! आपको क्या हो गया है ?'' नीचे बैठ कर चम्पा ने पूछा।

''चम्पा !'' कह कर मैं उसकी ओर देखता रह गया।

चम्पा ने कैप्टिन पर दृष्टि डाली। शायद वह कुछ बुदबुदायी भी। हाँ, केवल एक शब्द मेरा परिचय, मेरा–उसका सम्बन्ध।

कैप्टिन ने उठ कर हाथ मिलाया। चम्पा अन्दर चली गयी।

कैप्टिन ! तेगा ! तेगा सिंह ! कैप्टिन तेगा सिंह ! एक पुरुष की चार इकाइयों ने चम्पा को अपना लिया था। वह उसे कैन्टोन्मेन्ट एरिया में अकेली रोती हुई मिली थी। तेगा चम्पा की जाति का ही आदमी था।

चम्पा के उन्नीस वर्ष, कौमार्य, भोलापन, स्वर्ग की विभूति–सी आकर्षण, मृग–शावक–जैसी चितवन, सब ने मिल कर एक स्त्री का रूप बनाया था। एक पुरुष की पराजय सदा के लिये ! लड़ाई के मैदान में मशीनगन के सामने छाती खोल देने वाला पुरुष, शराब पीने वाला, सिविल लाइन्स में मस्ती से घूमने वाले तेगा की पराजय तथा चम्पा की विजय हुई। चम्पा बहू रानी ! श्रीमती चम्पा ! मिसेज तेगा सिंह !

चम्पा ने कितने दूल्हों को देखा है ? उसने मुझे कई बार अँगुली पर गिनाये थे। गुड़ियों के खेल में शादियाँ देखी थीं। उसे इसका शौक था। उसने मुस्करा कर कैप्टिन को देखा। वह मुझे भोजन कराने जा रही थी। उसका बच्चा कहाँ है ? वह अभी प्रश्न करेगी। मैं डर रहा था। पर चम्पा मेरे पास थी।

''बच्चा आनन्द से है न ?''

''हूँ।''

''शायद वह मुझे कभी न क्षमा करे। साथ क्यों नहीं लाये उसे ?''

मैं चुप था। मौन के आवरण में बहाना कर रहा था।

चम्पा रो पड़ी फूट–फूट कर। सब आँसुओं को एकदम सुखा देना चाहती थी। मैं काँ उठा। चम्पा के कमरे में गया। कुछ बल मिला––मैंने साफ–साफ कह दिया––''मैंने बच्चे को मैनेजर मि0 घोष बाबू को दे दिया। उन्होंने याचना की थी। मैंने सदा के लिये उसे उन्हें दे दिया। वे पिता हो गये। तुम्हारा बच्चा उनका पुत्र, उनका उत्तराधिकारी हो गया।''

चम्पा गंभीर हो कर हँस पड़ी। मुझे क्षमा कर दिया शायद उसने।

''और नीरू ?'' वह फिर बोली।

''उसका कुछ नहीं, वह केवल घोष बाबू की पत्नी है।''

चम्पा ने थोड़ी देर के बाद अधरों को फैलाया मुस्कराने के लिये, और वह हँस पड़ी। मैं यही चाहता था। मैंने स्पष्ट देखा, चम्पा खुश हैं उसमें अब भी जीवन है। कई दिनों के बाद चम्पा को सजीव देख कर, मैं भी जैसे जी उठा।

वहाँ से फिर चल पड़ा। वहीं न जाने कितने हजार मन वजन वाली तूफान मेल, नीरस, जड़। चम्पा मेरे साथ डिब्बे में बैठी थी। कैप्टिन नीचे प्लेटफार्म पर टहल रहा था। गाड़ी ने सीटी बजायी। कैप्टिन ने हाथ बढ़ा कर मुझसे मिलाया। चम्पा ने मुझे विदाई दी। उसकी आँखों से आँसू वह रहे थे।

भक्–भक करती हुई तूफान मेल चल पड़ी। चम्पा उतर गयी थी। वह प्लेटफार्म पर खड़ी मुझे देखती रह गयी थी विवशता पूर्ण दृष्टि से एकदम लाचार।

मैं चम्पा को जिन्दा देख कर चला आया। उसे वहीं छोड़ आया। यह मेरा व्यंग्य था ? नहीं, शायद केवल मेरी समस्या का हल था। विकल्पविहीन चम्पा की समस्या।

\+ + +

चम्पा की कुशलता का समाचार पाकर डेविड ने कुछ अपनी बातें बताई। डैजी ने उसका काफी रुपया चूसा। लिली ने तो एकदम दिवालिया बना दिया उसे। डेविड दोनों दिशाओं में एक–सा खिंचा चला आ रहा था। लिली और डेविड का प्रेम अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। इतना दूर, इतना ऊँचा, कि वहाँ से उतरना असम्भव था। उतरने में गिर कर चूर–चूर हो जाने का डर था उसे। पर वह बहादुर था, हर मानी में बहादुर। उसने लिली के अन्य साथियों को बुरी तरह से नीचा दिखाया। मुझे प्रसन्नता हुई। पर मेरे आन्तरिक पुरुष ने धीरे से कहा, 'डैजी ! डेविड ! मेरा प्रतिद्वन्द्वी ! मेरे पास भी अब शक्ति है। अब मैं अकेला हूँ ! बच्चे की चिन्ता नहीं मुझे और न चम्पा का भय। वे मुझसे अलग हैं।

मुझे बच्चा प्रतिदिन बैंक में देखने को मिल जाता। मैं उसे देखता, उसके पीछे रोती हुई नीरू को कल्पना में देखता। बच्चा मुझे देख कर मुंह फेर लेता, और किलक कर मिस्टर घोष से लिपट जाता। मैं देखता रह जाता। सुधि में आई हुई नीरू, चम्पा, दोनों की अलग–अलग स्त्रियाँ देखती ही रह जातीं। मैं, मेरे दो पैर, साइकिल के दो पहिये, बस इन्हीं से ऑफिस से घर, फिर घर से ऑफिस। कभी–कभी मैनेजर के बँगले पर भी जाता। यही थी मेरी विशेष दौड़। यही मेरा तीन पग का संसार, पर यह कितना विस्तृत था ? कितने रहस्यों तथा चिंतन–जगत को अपने में समा लेने वाला था। मैनेजर का बँगला, उसका कोच, कार, सैर–सपाटे, ऑफिस, चाय–पानी डिनर आदि, सभी जगह उसका बच्चा हँसता हुआ दिखायी देता। और दूसरी ओर नीरू उदास, चिंतित दिखायी देती ! मैं इस छोटे–से संसार में कितनी महान निद्रा में लीन, मन–ही–मन सुलगता हुआ, धुलता हुआ जीवित था ! अब मेरे इस संसार में केवल एक सोचती हुई नारी बिल्कुल बीचों–बीच बैठी हुई दिखायी पड़ती थी। नीरू मेरे लिये एक समस्या हो गयी थी, मेरी अपनी समस्या।

रात्रि के अँधेरे में जब मैं प्रकाश बुझा कर सब को भूल कर, अकेला होने के लिये सोने का प्रयत्न कर रहा था; नीरू की नारी विधवा–सी, सफेद साड़ी में धीरे–धीरे आकाश से उतर कर मेरी सेवा में आयी। चिंता एवं थकान का सम्बल कंधों पर किये हुए––निस्तब्ध, मूक, पलक सम्पुट में अजीब वेदना की उदासी भरे मेरे सामने आ कर खड़ी हो गयी निश्चेष्ट भाव से। मैंने उसे देखा, फिर मुंह फेर लिया, अपने मुंह को ढक लिया। पर मेरे कान खुले थे। मैं सुनने लगा, उसकी क्षीण, दर्दभरी आवाज––''आप मुझे भूल गये ? क्या बिल्कुल भूल गये ? मुझे देखिये, जरा आँख खोलिये। मैं आप के ही उपकार से श्मशान से उठ कर यहीं खो गयी थी। रूप बदल कर इसी भौतिक कुंज में विश्राम ले रही थी। पर आह, आप इस विधवा नीरू को भूल गये, उसकी नारी को भूल गये। नहीं, शायद मैं ही भूल गयी थी आपको। मैं अपने मातृत्व को भूल गयी थी ! मैंने पाप किया, जघन्य पाप। आपने गंगाजल पिलाया, मुझे छू कर पवित्र किया। वह बच्चा, एक विधवा का धन, किसी की निशानी मेरे जीवन का अमृत–पेय था। मैं कलंकिनी माँ हूँ। मैं गिरी बहुत नीचे, पर आप बहुत ऊँची चोटी से स्वयं धूप–सर्दी में खड़े प्रकाश देते रहे। मैं मर कर जी रही थी, और जीने की कामना कर रही थी; पर आपने यह क्या कर डाला ? आप भूल गये, सब भूल गये ! आपकी भूल अर्थात् मेरी मृत्यु। मुझे अमृत मिला, लेकिन बिष का प्याला भी साथि में दिया गया। बिष मुझे बाध्य होकर पीना पड़ा। मैनेजर और बच्चा, नीरू और नारी। एक का जीवन दूसरी की मृत्यु। आँख खोलिये, मुझे बचाइये। जैसे भी हो रक्षा कीजिये मेरा।.....''

मैं चौंक पड़ा, मुंह ढके न रह पाया। चौंक कर उठा बैठा। सामने देखा, कोई नहीं था। आकाश निस्तब्ध था, निर्वाक, निस्पन्द। केवल छितिज के तिमिर में एक डूबता हुआ नक्षत्र दृष्टिगोचर होता था। मैं देर तक आँखें मल कर उसे देखता रहा। उस स्वप्न की प्रत्येक बात याद करने लगा। नीरू का व्यक्तित्व मेरे सामने रो कर विलीन हो गया। मुझे फिर नींद नहीं आयी। संसार सो रहा था। उस निस्तब्ध रजनी में मुझे ऐसा लगा मानो नीरू मैनेजर के बँगले में रो रही है। मेरी भूल मेरे सामने फैल कर हँस रही है। बच्चा सिसक रहा है।

प्रातःकाल होते ही मैंने नीरू से उसके बँगले पर मिलने गया। वह सचमुच बदल गयी थी। उसकी शर्बती आँखों में आँसू थे। वह उदास हो कर मुझे देख रही थी। मैंने बच्चे को देखा। वह मैनेजर की गोद में हँस रहा था। मैनेजर अपनी मस्ती में था। उसके पार्श्व में नीरू उन्हें लाचार हो कर देख रही थी। मैनेजर बहुत प्रसन्न था। वह मेरे साथ जलपान पर बैठ गया। उसने बच्चे को देख कर कहा––''इसकी माँ कितनी अच्छी होगी !''

मैं चाय पीते–पीते रुक गया। मेरी दृष्टि उसके मुख पर जम गयी। मैंने नीरू को देखा, वह मुंह छिपाये अन्दर चली जा रही थी, शायद कहीं अकेले छिपकर रोने के लिये।

''आपने कुछ कहा नहीं !''

''जरूर होगी।'' मैंने कहा।

''उसका भी पता लगाइये।''

मैं चुप था। मेरा दम घुंट–सा रहा था।

''शायद मर गयी हो।'' मैनेजर ने कहा।

मेरे लिये बैठना भी मुश्किल हो रहा था। इसी समय परदे के पीछे नीरू की सजल, विवश आँखें दिखायी दीं।

मेरा पुरुष कह रहा था, 'कह क्यों नहीं देते, कि बच्चे की माँ नीरू है ? वह अभी जीवित है। क्यों न तुम सब जिम्मेदारी अपने सिर ले लेते ?' पर न कह सका।

मैं लौट आया। मैं मूक था। वहाँ मेरी भूल ने मेरी आवाज में ताला लगा दिया था। मैं हाथ मल रहा था। नीरू के अविरल गति से बहते आँसू को देखता रहा था। उसका घुलना और पिघलना देखता रहा चुपचाप, बन्दी–सा।

\+ \+ \+

दो रुपये, पाँच रुपये, दस, पन्द्रह–डैजी आरम्भ से चल कर अंत पर रुक गयी थी। वह आरम्भ कर के बड़ी तेजी से उस दूरी तक पहुँची थी। उसने उस स्थल पर आ कर न जाने कितनी प्रतिज्ञायें की थीं। डेविड का संयोग, उससे मेरा परिचय करा देना, और वह फिर दौड़ने लगी बहुत तेजी से पन्द्रह से बीस, तीस, चालीस, पचास तक। डेविड को उसने खूब बुद्धू बनाया। मुझे इस पर प्रसन्नता हुई, कोई दुःख नहीं। मैं डेविड से ईर्ष्या करने लगा था। डैजी मेरी थी, लेकिन इसी डेविड के कारण वह मुझ से इतनी दूर हट गयी थी। मैंने बहुत–सी बातें सोचीं। नीरू को दूर हटाया। चम्पा स्वयं दूर चली गयी थी।

मेरे पुरुष ने कहा, संसार मस्ती कर रहा है। सभी अपनी–अपनी समस्याओं को सुलझा रहे हैं, अपने उल्लू सीधे कर रहे हैं। तुम्हें क्या मिल रहा है ? तुम क्या आनन्द कर रहे हो ? कुछ नहीं, बिल्कुल कुछ भी नहीं। तुम्हारा व्यक्तिगत जीवन तो नीरस है, नितान्त शुष्क। धर्म, सभ्यता, गिड़गिड़ाने वाली आदत, ''जी'' कहते हुये भी उसकी हिंसा करने का पाप, इन सब को दूर फेंक दो। उठो ! तुम भी 'काफी हाउस' जाओ, 'हाउजी' जाओ, 'स्वीट मार्ट,' 'पिक्चर,' 'हालीवुड गेलरी,' 'हैविन–बालकनी' घूम आओ। अन्यथा एक दिन मर जाओगे इसी तरह कीड़े की भाँति। सब को सोचते रह जाओगे। और सोचना पाप है, करना पाप नहीं ! ऐसा कहते हुए मानो किसी ने फटकार कर मुझे अपनी जगह से उठा दिया। मैंने ट्रंक खोला, कपड़े बदले, पर्स सँभाला। अपने पुरुष के बताये सारे काम एक–एक कर करता गया। काफी हाउस से उठ कर 'हैविन बालकनी' पहुँचा। वहाँ 'लिली' मिली। उससे जी भर कर प्यार किया मैंने। घर आ कर, जी भर आठ बजे तक सोया जीवन में आज प्रथम बार।

दूसरे दिन, नहीं दूसरी संध्या–दूसरे कपड़े पहने। दूसरी दुनियाँ की ओर चला। काफी हाउस से अस्पताल लॉज होता हुआ डैजी को साथ ले कर, प्रलोभन दे कर सिनेमा देखने गया सैकिण्ड शो में।

तीसरी संध्या, फिर चौथी, पाँचवीं बस इसी तरह न जाने कितनी। मैंने फिर अपना पुराना वाक्य दुहराया, 'मनुष्य में प्यार करने की कितनी क्षमता है। वह प्यार करता है। प्यार करने की उसकी आदत है।'

फिर एक संध्या को पार्क में बैठा हुआ डैजी के अधरों की सुधा पी रहा था, कि उसने मुझे पकड़ कर कहा––''मुझे एक साइकिल खरीद दीजिये।''

''अच्छा।'' मैंने संक्षिप्त–सा उत्तर दिया।

फिर उसने रोज–रोज पूछना शुरू किया। साइकिल का पिण्ड छुड़ाया–– कल का वादा करके। अगले दिन घृणास्पद स्वर में कहा––''आई हेट यू।'' (मैं तुमसे घृणा करती हूँ।)

मैंने उससे तर्क किया, और हँस कर उसे अंक में भरना चाहा। उसने कस कर मुझे एक घूंसा मारा। मैं चुप रह गया। वह डपट कर कह रही थी––''निकल जाओ यहाँ से !''

मैं केवल सुन कर रह गया। वह डाँटती रही। मैं फिर भी खड़ा था। वह अन्दर किसी को बुलाने गयी। मुझे भय मालूम हुआ। मुझे घूसे की चोट में दर्द महसूस हुआ। मैं लौट पड़ा सोचता हुआ, मनुष्य में प्यार करने की आदत होती है। संसार प्यार करता है, केवल प्यार। और उसी के नाम पर इतनी भर्त्सना ! वाह रे पुरुष !

मेरा पुरुष मर गया, फिर भी मैं जी रहा हूँ––केवल जीने के लिये आकाँक्षा है इसलिये। मैंने किसी से कुछ कहा नहीं। केवल इच्छा हो रही थी, कि चम्पा के पास जाऊँ और उसकी गोद में मुंह छिपा कर खूब रोऊँ––जी भर कर नीरू के नाम पर, चम्पा के नाम पर। पर क्या यह सम्भव है ? दिल्ली में कैप्टिन के पास चम्पा है और मैनेजर के पास नियंत्रित

नीरू। मेरे आँसुओं का कुछ मूल्य नहीं। रात्रि के सूने में डैजी का रूप विकराल–सा, उसके रंगे हुए लिप्स्टिक लगे ओठों से भयानक दुर्गन्धि–सी निकलती जान पड़ी मुझे।

मेरा श्मशान पर फेंका हुआ पुरुष मूक भाषा में स्पष्ट कह रहा था––''कोई किसी से प्यार नहीं करता। बल्कि सब के पीछे कोई अन्य वस्तु होती है, वही प्यार कराती है। मानव में प्यार करने की आदत नहीं होती, क्षमता नहीं होती। वह विवश हो कर प्यार करता है। दुनिया के शरीर की दो मुख्य हड्डियाँ––रुपये (धन) और काम–लिप्सा। यही है प्यार करने की मरुभूमि, जहाँ मनुष्य दौड़ता हुआ आता है; पर प्यासे मृगों की भाँति लौटता है हाँफता हुआ, रोता हुआ, फिर कभी न जाने के लिये सौगन्ध खाता हुआ। तुम्हें याद नहीं, डैजी का प्यार केवल तुम्हारे पाँच ठोकरों पर अंकुरित हुआ था। साइकिल उस प्यार की चरम सीमा थी। तुमने उसे हृदय की रानी समझा, स्वयं को धोखा दिया तुमने। तुम्हारे प्यार का आधार–स्तम्भ केवल भोग–लिप्सा थी, एक पुरुष–गत कमजोरी और उनका केवल धन। तुम भ्रम में थे। आँखें खोल कर देखो, मनुष्य में प्यार करने की क्षमता ही कहाँ है ? तुम्हारी यह धारणा नीरू को देख कर हुई थी न ? अब देखो मैनेजर की क्षमता ! वह प्यार करता है। उसकी नीरू अब कहाँ है ? अब ताजमहल, हिमालय, काश्मीर के सैर–सपाटे कहाँ है ? उसने चूस लिया उसकी कमनीयता को। इसके उपरान्त उसकी माँग बढ़ी। उसने चाहा एक बच्चा, अपने भविष्य के मतलब के लिये। उसे अभयदान दिया ! वह अब बच्चे का प्यार करेगा। नीरू को ठुकरा देगा। उससे किसी दिन स्पष्ट कह देगा, कि उसे उसकी जरूरत नहीं। नीरू अब उसके काम की नहीं रही। न उसमें पहले–जैसा रूप है, न यौवन ! फिर क्या होगा ? क्या करेगी नीरू ? एक अपाहिज लाचार नारी कर ही क्या सकती है सिवाय आँसू बहाने के ?'

कई दिनों तक मैं ऑफिस न जा सका। एक मामूली–सी बात सोचने पर चिन्ता की कितनी रेखाएँ अनन्त में बन उठती हैं ? मैं अपने घर में एकाकी पड़ा रहता। दोपहर और शाम को स्टेशन–रेस्ट्राँ में भोजन कर आता।

मैं नीरू को ध्यान में रख कर सोच रहा था। मेरे कार्य मेरे लिये अभिशाप बनते जा रहे थे। मैं सोचता–सोचता थक गया। दस बजे से दो बज गये थे। मैंने देखा, बहुत दिनों के बाद, नीरू स्वयं अपनी कार से मेरे दरवाजे पर आयी थी। मैं सँभल कर बैठ गया। वह दौड़ती हुई मेरे बिल्कुल निकट आ पहुँची। फिर एकाएक रोने लगी। मैं अभी तक उसी नीरू की बात सोच रहा था, फिर भी मैंने पूछा––''क्या है नीरू ?''

मैंने ही उस विष को बोया, फिर भी उसे शान्त करने लगा। उसने मुझे देखा। बड़ी देर तक मूक होकर देखा। फिर उसने भरे गले से कहा––''मैं मर जाती तो अच्छा होता।''

मैं बोला––''नहीं, तुम्हें जीना पड़ेगा। मैं तुम्हें जिलाऊँगा।''

''कैसे ?''

मैं चुप था। मेरे पास दो उत्तर आ रहे थे––प्रथम यह, कि 'बच्चा मर जाता, तो अच्छा था,' और दूसरा, कि 'तुम फिर माँ बन जाती, तो.....'

लेकिन मैं मूक था। नीरू की आँखों से आँसू बह रहे थे। शायद वह मेरे दोनों उत्तरों की मूक स्वरों को सुन रही थी। वह धीरे–धीरे अपने को खोल रही थी––अपने पापों को मुझसे दुहरा रही थी––''आपने मेरा मातृत्व लौटाया, पर वही मेरे लिये विष हो गया। अब आप ही मुझे बचाइये, उसे लौटाइये, मुझे कोई रास्ता बताइये।''

मैंने कहा––''अच्छा।''

नीरू चली गयी। मुझे और गम्भीर कर के। जाते समय भी वह रो रही थी। मैंने उसे आश्वासन दिया था, 'अच्छा।'

पर मेरे पास क्या था ?––कुछ नहीं। मेरा पुरुष स्वयं मर चुका था। अब केवल एक अहम् का भाव शेष था। इसी का उत्कर्ष मेरे मृतक पुरुष की संजीवनी थी।

———————

बारह

चम्पा का पत्र आया। कैप्टिन ने स्वयं लिखा था, 'आप दिल्ली चले आइये, यहीं रहिये।' मैं सोच रहा था, 'सचमुच वहाँ चला जाना अच्छा होगा। यहाँ नाना प्रकार की चिन्ताओं को ढोना पड़ रहा ह।' पर नीरू को याद आते ही जैसे किसी ने मुझे धिक्कार कर कह दिया हो––'भूल गये अपना पथ ? अपने पुरुष का भी ख्याल नहीं तुम्हें ? मुसीबतों से घबरा गये ? छिः, तुम पुरुष नहीं, कायर हो।'

मैंने दिल्ली न जाने का निश्चय किया।

इसी समय मैंने देखा, डेविड उदास चेहरा लिये मेरे पास आ पहुँचा। पर वह मुझसे हाथ मिलाते समय हँसने लगा। डेविड ने गम्भीरता से बताया, कि लिली ने कोतवाली में उसके विरुद्ध रिपोर्ट की है। उसकी कलाई–घड़ी दो–तीन दिन हुए गायब हो गयी थी। उस पर चोरी का इल्जाम लगाया है लिली ने।

मैंने आश्चर्य से पूछा––''तुम पर ?''

उसने कहा––''हाँ मुझ पर, लिली ने कोतवाली में मेरा नाम बताया है। उसके बहुत–से नये साथी हो गये हैं। वह मुझे फँसाने के फेर में है।''

मैं उदास हो कर चुप हो गया। इच्छा हो रही थी, कि मैं भी डैजी का खेल कह दूं, पर कह न सका। कहना बेकार–सा लगा। यदि डेविड कुछ दिनों के पहले यही बात कहता, तो मुझे विश्वास ही न होता। पर इस समय मुझे उसकी बात पर यकीन हो गया। तो लिली की नजर में आज डेविड चोर था। वही डेविड, जो एक दिन उसे एक रिष्ट वाच स्वयं देने गया था !

मैंने पूछा––''तब क्या करोगे ?''

''अगर कहो, तो मैं उसे एक नयी रिष्टवाज दे दूं !''

''नयी रिष्टवाच ?''

मैं थोड़ी देर गम्भीर रह कर जोर से हँस पड़ा। डेविड कह रहा था––''इसमें हँसने की कौन–सी बात है ?''

मैंने कहा––''इस विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता।''

डेविड चला गया। मैं ऑफिस जाने की तैयारी करने लगा। सहसा नीरू के चपरासी ने परदे के बाहर से मुझे आवाज दी। फिर वह अन्दर आया। उसने मानो एक साँस में कहा––''बहू जी ने भेजा है। कल शाम को बच्चे की नाप ले रही थीं, उसके लिये शायद कुछ सीना था। मैनेजर साहब ने न जाने क्यों देखते ही बच्चे को छीन लिया। वे बहुत रात तक रोती रहीं, किसी ने नहीं मनाया। सुबह साहब ने उनके साथ चाय तक नहीं पी।''

''तब ?'' मैंने पूछा।

''आप ऑफिस न जा कर––उनके पास चलिये, बुलाया है आपको।''

चपरासी चला गया। मुझे अपनी आशंका सत्य होती जान पड़ी।

मैं नीरू के पास गया––एक बहुत बड़ी आशंका लिये। नीरू मुझे अपने कमरे में ले गयी। उसने वहाँ बड़ी गम्भीरता से कहा––''अब मेरा मर जाना अच्छा है।''

मैं थोड़ी देर चुप रहने के बाद उफन–सा पड़ा। मैंने स्पष्ट, शब्दों में कहा–''तुम्हें जीना पड़ेगा। मैं तुम्हें जीवित रक्खूंगा। मैनेजर की क्या हस्ती है ?'' मैंने नीरू के सामने इतनी बड़ी बात कह डाली। मैं भूल गया, मेरी हस्ती क्या है ? मैं किसके यहाँ नौकर हूँ।

मैं वहीं से ऑफिस चला गया। आज कल मैनेजर, मुझसे प्रसन्न रहता है। मैंने देखा, वह बैंक के कामों को बहुत रूपों में छोड़ कर बच्चे के साथ खेलता है। मुझे उस समय बच्चा मेरा शत्रु जान पड़ा। जैसे मेरे पाले हुए साँप ने केंचुल छोड़ दिया हो। नीरू ने केवल एक बार वज्र सा दिल कर के उससे मुख मोड़ लिया था––अपनी जिन्दगी बिताने के लिये। मैंने नाहक उस बच्चे को पाला। उसने मुझे घर से निकलवाया; चम्पा को कुली बनाया, फिर उसका अपहरण हुआ; डैजी से परिचय हुआ, जिसने अन्त में मेरे पुरुष की हत्या की; और अब शायद नीरू के मरने की बारी है। यदि नीरू नहीं बची, तो सारा दोष, पाप, कलंक मेरे ऊपर होगा !

संध्या को मैंने नीरू के सामने मैनेजर से कहा––''नीरा से आप क्यों अप्रसन्न है ?''

''भाई, देखो, मुझे इन मामलों में परेशान होने के लिये फुरसत नहीं है।'' वह बोला।

''पर आपने इनका दिल दुखाया है।''

''यह कैसे ?''

''क्या बताऊँ।''

''नहीं, बताइये न !''

''मुझे कहना ही पड़ेगा, क्या यह बच्चा नीरा का नहीं ?''

''इसे तो आप जानते ही हैं। मैंने आप से लिया है।''

''यदि मैंने इसीलिये दिया है, कि यह आपकी सारी कोमल वृत्तियों को अपने में केन्द्रीभूत कर लेगा, और नीरा आपको शत्रु लगने लगेगी, तो मैं उसे कभी आपको न देता। मैं यह अन्याय नहीं देख सकता।''

''तो आप जबरन नीरा से प्रेम करायेंगे ?''

मैं क्या बोलता ? मेरी जबान पर ताला लग गया। सचमुच प्रेम जबरन नहीं किया जा सकता, यदि प्रेम की वह पृष्ठ–भूमि उजड़ जाय। मैंने घूम कर देखा, नीरा की आँखें सजल थीं।

''पर नीरा के प्रति आपका बर्ताव अच्छा होना चाहिये।'' मैंने कहा।

मैनेजर थोड़ी देर शान्त रहा, मानो वह घुमकर अपने पुरुष को टटोलने की कोशिश कर रहा हो। फिर उसने शक्ति संचित कर कहा––''इससे आप का मतलब ?''

''इसे मैं नहीं समझता।''

''आपको समझना चाहिये।''

''मुझे ?''

''जी हाँ, बच्चे को उसके स्थान पर रख उसे भूल जाना, मेरे ख्याल से आप की एक नारी की हत्या है।''

''आप किसे शिक्षा दे रहे हैं ?'' बच्चे को देखते हुए मैनेजर ने कहा।

''मैं शिक्षा दे रहा हूँ ! आप भूल जाइये, कि आप मैनेजर हैं और मैं आपका एक कर्मचारी।''

मैं तमतमा उठा। नीरू ने मेरा हाथ पकड़ लिया। उसने प्रार्थना की––''ऐसा न कहिये। मैं पूरी तरह सुखी हूँ। इन्हें कुछ न कहिये, ये मेरे पति हैं।''

मैं लौट आया। काफी रात बीत चुकी थी। घर पर मुझे ऐसा लगा, कि मानो आज मेरी विजय हो गयी। मैनेजर कुछ सहम–सा गया था।

मैं होटल से लौट कर सोने की तैयारी कर रहा था। पर डेविड के लिये मानो रात्रि नहीं थी। वह मुझ से मिलने आया। उसने गर्व के साथ कहा––''मैंने लिली को एक कीमती रिस्ट वाच दे दी है।''

''और उसकी रिपोर्ट ?'' मैंने पूछा।

''उसने वापिस ले ली है।'' उत्तर दे कर वह हँस पड़ा।

उस प्रकाश में डेविड को देखा मैंने। वह कितना बहादुर है !

उसने डैजी को क्या–क्या दिया होगा ? कितना प्यार किया होगा ? सचमुच डेविड साहसी है, शक्तिमान है !

मैं पूछ बैठा––''उसके मानी लिली फिर तुम्हारी हो गयी, वही पहले के समान ?''

''और थी कब नहीं ?'' उसके हृदय की प्रसन्नता आँखों में झूल रही थी।

मेरी इच्छा हो रही थी, कि मैं कह दूं, 'एक दिन वह नहीं रहेगी––तुम्हारे प्यार की पृष्ठ–भूमि ज्योंही नष्ट होने की होगी।'

पर मैंने कहा नहीं। इसमें डेविड का दिल दुःख जाता। फिर कौन जाने मेरी अनुभूति ही खोखली हो ?

चलते समय डेविड ने अपने पैंट से एक बोतल निकाली, और हँस कर कहा––''आधी तुम पियो और आधी मैं।''

''मुझे इसी तरह क्षमा करते रहो डेविड !''

''तुम देहाती हो।'' यह कह कर उसने पूरी कुछ मिनटों में खाली कर दी। अंत में मस्ती से निःश्वास ले कर कहा––''ए ड्राट ऑफ विन्टेज.....'' और फिर खूब ठठा कर हँसा। मैं भी उसी में बह गया।

डेविड चला गया।

\+ \+ \+

दसवें दिन चम्पा का पत्र आया, कि उसकी तबियत इन दिनों कुछ खराब है। खाना नहीं पचता, और वह पीली होती जा रही है। मुझे गोली–सी लगी। मैं तीसरे दिन दिल्ली रवाना हो गया। मैं ऊपर की बर्थ पर लेटा था। दिल्ली पहुँचते–पहुँचते मैंने नीचे की बर्थ पर एक स्त्री को देखा। वह पीली पड़ गयी थी। उसके पति किसी से बात–बात में अपनी पत्नी की ओर इशारा कर के कह रहे थे––''इन्हें आज पन्द्रह दिन से बराबर कै होती है, पानी तक नहीं पचता, भोजन की कौन कहे ! बहुत परेशानी है।''

मैं चुपचाप उस स्त्री को देख रहा था। चम्पा की छाया उस पर पड़ रही थी। दूसरे आदमी ने, जिसकी अवस्था साठ वर्ष से अधिक थी, हँस कर कहा––''बड़े अच्छे आसार हैं तब तो।''

स्त्री–पुरुष दोनों लज्जित हो गये। मुझे भी लज्जा आ गयी। 'चम्पा गर्भवती।' मैं सोच रहा था।

दिल्ली स्टेशन पर पहुँच कर मेरे पैर आगे नहीं बढ़ रहे थे। मेरी इच्छा हो रही थी, कि मैं चम्पा को न देखूं। अगर उसे देखूं भी, तो कैप्टिन को न दिखायी दे। उसके प्रति मुझे घृणा हो रही थी।

मैं दिल्ली में रह कर चार दिनों तक चम्पा को देखने न गया।

मैंने घूम–घूम कर प्रत्येक धर्मशालाओं, बड़े–बड़े मकानों में ठूंसे हुए तथा मुख्य सड़कों के दोनों ओर फुटपाथों पर निष्क्रमणार्थियों (शरणार्थियों) को देखा। नहीं–नहीं बल्कि कितनी चम्पाओं को देखा। कितने हृदय–विदारक घटनाओं तथा उनसे उत्पन्न समस्याओं को मैंने अपनी आँखों से देखा। असंख्य टूटे हुए दिलों की कहानियाँ अपने कानों से सुनीं। उनके सामने मैंने अपने को रक्खा, अपनी चम्पा को रक्खा, नीरू को रक्खा, सब को उलट–पलट कर आँका, तब मुझे मालूम हुआ, कि किसी ने मानो कह दिया हो, 'मानव एक कीड़ा है, रेंगता हुआ। कोई अज्ञात शक्ति इन कीड़ों को रौंदती हुई निरन्तर चलती रहती है। कीड़े मरते जाते हैं, फिर दूसरे उत्पन्न होते रहते हैं। तुम्हारी समस्या का क्या मूल्य ? तुम्हारी परेशनी से संसार को क्या ? देखते नहीं, सड़कों पर लुटी हुई हजारों नारियाँ ! चम्पा, नीरू, डैजी ! अगर यहाँ न दिल भरे, तो जा कर हरिद्वार में क्यों नहीं देख आते ? और अगर हिम्मत हो, तो क्यों नहीं पूर्वी और पश्चिमी पंजाब, बंगाल, हैदराबाद, फ्रान्टियर में घूम आते ? तब तुम्हें उस महान समस्या का वह रूप दिखायी देगा, जहाँ तुम फिर पुरुष हो जाओगे। मगर तुम्हारे अन्दर

हिम्मत कहाँ ? कभी भी दिल खोल कर न पाप किया न पुष्य ! कीड़े की मौत मरोगे तुम भी, इसी तरह, जैसा तुम देख रहे हो ! विश्वास करो, जीवन का मूल्य है प्राणों की बाजी, कुछ नवीनता, कुछ क्रान्ति !'

मुझे बहुत बुरा लगा–कि यह न जाने कौन अज्ञात शक्ति मेरे ही अन्दर अपना नीड़ बना कर रहती है, और समय–समय पर अकस्मात मुझे फटकार सुना देती है। मुझे भी मालूम है जीवन की परिभाषा, उसका विशाल रूप। मैंने व्यक्तिगत रूप से क्रान्ति की है। मैं निरा कीड़ा नहीं। मुझमें मेरा व्यक्तित्व है ! मेरा बौद्धिक स्तर, मानसिक चिंतन, मेरी अलग अपनी दुनिया जिसमें मेरी नीरू, मेरी चम्पा, और भी न जाने क्या–क्या.....

इस भावना से प्रेरित हो कर मैं तत्काल ताँगे पर सवार हो चम्पा के बँगले पर पहुँचा। मैंने देखा, बैठक में चम्पा कैप्टिन के साथ ताश खेल रही है। कौन कहता था, वह बीमार है ? मैं अन्दर घुसते ही लज्जित हो गई। कैप्टिन मुझे देख कर हँसने लगा। चम्पा दौड़ कर अन्दर चली गयी। मैंने चम्पा को तो थोड़ा–सा ही देखा; पर उसकी प्रगति की अच्छी तरह देखा। अब वह एक जगह स्थिर नहीं; वह काफी आगे बढ़ चुकी है।

मेरे हृदय में चम्पा के लिये बहुत स्थान था, फिर भी वहाँ एक दिन से अधिक नहीं रह सका। हाँ, दिल्ली आने पर अकारण मेरा पुरुष जी–सा उठा था, और उसमें एक अजीब क्रान्ति की भावना जागृत हो गयी थी; क्रान्ति की इस भावना का सम्बन्ध यद्यपि चम्पा से गौण रूप में ही था, पर मुख्य रूप में था नीरू से।

आखिरी समय, चम्पा मेरे पार्श्व में बैठ कर मुझे अपलक, उदास दृष्टि से देख रही थी। मैं उसे हँसाने के प्रयत्न में था, पर वह उतनी ही अधिक गम्भीर होकर उदास होती जा रही थी। उसी समय नीरू मुझे अपनी गम्भीर समस्या लिये हुए याद आने लगी। मैंने कहा––''चम्पा तुम्हें वह मेरी पहली कहानी याद है ?''

''कौन–सी कहानी ?''

''वही चिड़ियों वाली, जो उस समय अधूरी थी, तुम्हारे शब्दों में बिना सिर–पैर की।''

''मुझे नहीं याद पड़ रही है।''

''अरे भाई, अब तुम कैप्टिन की पत्नी.....'' चम्पा ने मेरा मुंह पकड़ लिया।

''कहिये ?''

''उस पीपल के पेड़ पर की चिड़ियों की कहानी।''

''हूँ !''

''तब वह पहली चिड़िया, जिसने अपने बच्चे को गिरा कर दूसरे पक्षी के साथ नया घोंसला बनाया था।''

''हाँ, तब क्या हुआ ?'' चम्पा ने उत्सुकता से पूछा।

''आगे चल कर बहुत बुरा हुआ। पक्षी को दैवयोग से वही बच्चा मिल गया।''

''अरे ! फिर क्या हुआ ?''

''यही हुआ, कि पक्षी अपनी चिड़िया से प्रेम हटा कर उस बच्चे से करने लगा। चिड़िया रात–दिन हृदय में रोती रहती है। उसका उस घर में जीना मुश्किल हो रहा है।''

''नीरू का !''

''हाँ, यही समझ लो, मैनेजर के ऊपर मुझे बहुत क्रोध आ रहा है।''

''तब उसका क्या होगा अब ?''

''जो मेरा होगा, वही उसका भी।'' अनजाने ही मेरे मुंह से यह वाक्य निकल गया।

''आपका चरित्र सोने के अक्षरों में लिखा जायगा, बाबू जी !''

''केवल तुम्हारी ही दृष्टि में चम्पा !''

मैं दिल्ली से चला आया––केवल अन्तिम समय उसे यह चेतावनी देकर, कि पत्र और जल्दी–जल्दी देना। मैंने अपने घर को खोला, बरामदे में एक लिफाफा पड़ा हुआ मिला। उसे उठाया। नीरू का था वह। वह शायद यहाँ आ कर निरश हो कर लौटती हुई मेरे नाम यह पत्र लिख कर छोड़ गयी है।

पत्र खोल कर मैंने पढ़ना शुरू किया।

'.....'

रात्रि के दस बजे हैं। मैं आपके पास आयी थी। यह पत्र मैं यहीं लिख कर आपके घर में डाल दे रही हूँ। आप जल्दी आयेंगे, मुझे विश्वास है। मेरा बच्चा मेरे पास है। मेरा आँचल उसके समीप होते हुए भी उसे अपनी छाया नहीं दे पाता। मेरे आँसू, मेरी लोरियाँ, मेरा सादा मातृत्व घुल–घुल कर गल रहा है। मेरा बच्चा, क्षमा कींजियेगा, मेरे सुख की मादक कल्पना न हो कर कष्ट का कारण बन गया है। मैंने निर्लज्ज हो कर जिस मोती के लिये अनन्त समुद्र में गोता लगाया था, वह केवल सीप निकला। शायद मोती ही बदल गया। मैं अपना तिरस्कार सह सकती हूँ, पर अपने मातृत्व, नारीत्व का नहीं। इस समय पृथ्वी तल मेरे पैर के नीचे से निकल जाना चाहता है। अणु–अणु मेरा उपहास कर रहा है। आप इस समस्या को

सुलझाइये, नहीं तो मेरे लिये केवल एक पथ मेरी मृत्यु ही है। मैं इससे अधिक स्पष्ट और क्या हो सकती हूँ ? अनन्त आँधी में जिस पृथ्वी–तल पर खड़ी थी, मैंने एक हरी–भरी पेड़ की डाल को पकड़ कर उसे छोड़ दिया, केवल दूर, बहुत दूर बढ़ जाने के लिये। पर मेरी टहनी, मेरा आकार सब–कुछ छूटने जा रहा है। आप जानते हैं, मैनेजर साहब कितने अच्छे आदमी थे ! मैं अब भी उन्हें पसन्द करती हूँ। वे मुझसे छूटने न पायें, दूर न हों। मैं सब सहूँगी, हाँ, सब–कुछ, और एक दिन ऐसा अवसर भी खोज लूंगी, जब मैं धीरे से, किन्तु गर्व के साथ कह सकूं, 'यह बच्चा मेरा है ! मैं इसकी माँ हूँ !

और अधिक मिलने पर–– आपकी

नीरू।'

मैंने पत्र को तीन–चार बार पढ़ा।––मुझे नीरू ठीक उसी चम्पा की भाँति प्रतीत हो रही थी, जो एक स्थान पर स्थिर थी, अपने हृदय में एक अनन्त प्रतीक्षा किये, और उस प्रतीक्षा का नायक है मैनेजर। मुझे नीरू अपलक आँखों में आँसू भरे मेरी ओर देखती हुई प्रतीत हुई। कुछ क्षण के उपरान्त ऐसा अनुभव हुआ, मानो नीरू मेरे कंधे पर सिर रख कर रो रही है; न जाने कब से रो रही है।.....

मैं काफी दिनों के बाद ऑफिस गया। घोष बाबू बच्चे के साथ अपने कमरे में बैठे थे। मैंने नमस्ते किया। उस समय वे कुछ ठण्डे–से जान पड़े। दोपहर के समय उन्होंने चपरासी के हाथ एक चिट भेजा। उस पर सावधानी के साथ लिखा था, 'अगर काम करना है, तो ठीक से करिये !' मेरा रक्त खौल उठा। इच्छा हुई, कि दौड़ कर उनके कमरे में जाऊँ, और बच्चे को छीन कर कहीं लोप हो जाऊँ। बस, सब काम ठीक हो जाय। मेरा मन काम में नहीं लग रहा था। मैं उठ कर, मैनेजर के कमरे की ओर गया। चिक के बाहर से देखा, मैनेजर से बच्चा तोतली वाणी में घुल–मिल कर बातें कर रहा था। मैंने अनुभव किया, मानो नीरू की आत्मा का प्रतिरूप जाग कर बातें कर रहा हो। और वही मैनेजर मुझे––अगर काम करना हो तो ठीक से करिये––वाक्य लिख कर देता है ! मैंने क्रोध भरी आँखों से उसे फिर देखा। मैनेजर मुझे पशु की भाँति लगा, जो बच्चे को पा कर अपनी प्यास को तृप्त कर रहा था। उसका सौम्य व्यक्तित्व मुझसे कह रहा था, 'मैंने इसीलिये नीरू से विवाह किया था, कि मुझे पिता की अमूल्य संज्ञा मिले। मेरा उत्तराधिकारी मेरे अंक में आये। मुझे मेरी निधि मिल गयी, अब मुझे नीरू से प्रेम नहीं।'

अन्तिम वाक्य ने मुझे अज्ञात रूप से फिर क्रोधित बना डाला। मेरे पैर आगे बढ़ने वाले थे। सोच रहा था, या तो मैनेजर रहे, या बच्चा, या मैं। मैं इसी भावना से प्रेरित हो कर अन्दर जा पहुँचा। बच्चा मेरी ओर देखने लगा। मैनेजर ने पूछा––''क्या है ?''

मैं मूक था। घोष बाबू की ओर देर तक एकटक देखता रहा।

''क्या है ?'' मैनेजर ने फिर पूछा।

''यह कैसी चिट है ? क्या मेरे काम से आपको असन्तोष हो रहा है ?''

''जी हाँ।'' मैनेजर ने छोटा उत्तर दिया।

''मेरा उपकार भूल गये ?''

''कैसा उपकार जी ?'' उसने अपने को बदल कर कहा।

मैंने आगे बढ़ कर बच्चे को पकड़ लिया। वह चिल्ला उठा। मैनेजर ने जोर से चिल्लाते हुए घंटी दी। कमरा थोड़ी देर में भर गया। मैं बाहर निकल आया। मैनेजर केवल कह रहा था––''बड़ा बदतमीज आदमी है !''

फिर वह फौरन अपने बँगले पर चला गया। मैं शाम को होटल में खाना खा रहा था। करीब–करीब खा चुका था। बॉय ने कहा––''बाहर कोई आपको बुला रहा है।''

मैंने बाहर आ कर देखा, नीरू का मैनेजर आया था। वह एक साँस में कहने लगा––''साहब ने बहू जी को बहुत बुरा–भला कहा है। शायद वे उन्हें घर से निकाल देंगे।''

मेरे पुरुष ने मुझे उकसाया। मैं सीधे घोष बाबू के बँगले की ओर चल पड़ा। नौकर ने कहा––''बाबू जी, मामले को सुलझाने की कोशिश करियेगा, कहीं, मामला बढ़ न जाय। साहब बहुत बिगड़े हुए हैं। आपकी भी गालियाँ दे रहे थे।''

मैं तेजी से बढ़ता जा रहा था बँगले की ओर। सामने पहुँच कर मैं सड़क पर से ही मैनेजर को डाँट सुनने लगा। मैंने पोर्टिको से ड्राइँग रूम में देखा, वह रोती हुई, मूक नीरू को फर्श पर घसीट रहा था और गालियाँ मेरा नाम ले–ले कर दे रहा था। बँगले के अन्दर पहुँचते ही मैंने मैनेजर को सामने से एक जोर का धक्का दिया। वह लड़खड़ाता हुआ उसी सोफे पर गिर पड़ा। मैंने नीरू का उठाने की चेष्टा की। वह थक–सी गयी थी। मैंने घूम कर पीछे देखा मैनेजर अन्दर से लौट रहा था। मुझे शंका हुई, उसके हाथ में पिस्तौल न हो। मैंने किनारे से उसके ड्राइँग रूम में प्रवेश करते ही उसे पकड़ लिया। मेरी अन्तरात्मा चिल्ला कर कह रही थी, कि 'पीस कर रगड़ दो इस कीड़े को।'

मैं अकारण ही अपनी भुजाओं का कसता जा रहा था। वह चिल्लाने को था, नीरू मानो मूर्छा से जाग गयी। उसने चिल्ला कर मैनेजर की पिस्तौल को सँभाल लिया। मैनेजर अकारण डर से काँपने लगा। मैंने उसे छोड़ दिया। वह उसी

सोफे पर बैठ गया और एक क्षण के उपरान्त उसने अपनी आँखें जलते अँगारों–जैसी कर के चिल्ला कर आदेश दिया––''मारो इसे।''

अर्दली हम लोगों के पास ही मूर्तिवत खड़ा था। दाहिने कमरे में जा कर फोन पर घोष बाबू ने किसी को फोन किया ! मैं दौड़ कर बच्चे को उठाना चाहता था। पर अकस्मात पीछे से मेरे सिर पर एक रूल गिर पड़ा। मैंने बच्चे के वस्त्र के ऊपर खून के कतरे देखे। मैं उसे वैसे ही छोड़ सड़क पर निकल गया। नीरू चिल्ला रही थी। मैं किंकर्त्तव्य–विमूढ़ होकर वहीं खड़ा रहा। मेरी कमीज पर खून के कतरे गिर रहे थे। इसी समय भैया के घर से बहिन रेखा रोती हुई मेरे पास दौड़ आयी। मैंने उसे देखा तक नहीं। मैं सीधे नीरू को देख रहा था। मुझे घर की ओर घसीट रही थी। पर मैं निष्प्रभ खड़ा था।

एकाएक पोर्टिको में खड़ी होती हुई पुलिस–लारी देखी मैंने। फिर भी मैं भाग नहीं सका, और न बहिन रेखा ही मुझे खींच कर ले जा सकी।

बहुत देर में बाद मेरी दृष्टि रोती हुई रेखा पर गयी। उसकी गोल–गोल आँखें फूल आयी थीं। मैंने उसे क्षण मात्र में अपने हृदय से लगा लिया। कहा––''बहिन रेखा, तुम कितनी पवित्र हो ! मुझे क्षमा करना रेखा। अच्छा हो, तुम कुछ दिन के लिये मुझे भूल जाओ, बिल्कुल भूल जाओ।''

मैं उससे हाथ छुड़ा कर सीधे चौराहे से दक्षिण दिशा की ओर भाग निकला। सिसकती हुई रेखा के 'भैया ! भैया !' शब्द मुझे बहुत देर तक सुनायी पड़ रहे थे। मैं काल्विन रोड़ के क्रासिंग से हास्पिटल रोड़ पर बढ़ रहा था। ग्यारह बजने के करीब थे। सड़क काफी शान्त हो गयी थी।

मैंने दूर से किसी को आर्त–स्वर में पुकारते हुए सुना। मैं ज्यों–ज्यों बढ़ता जाता था, वह आर्त्त–स्वर अधिक स्पष्ट होता हुआ' 'डेविड, डेविड, माई डेविड !' पर पहुँच कर रुक गया। मैंने थोड़े ही आगे देखा, डेविड शायद डैजी को फटकारता हुआ आगे बढ़ रहा था। उस रजनी में रोती हुई डैजी उसका पीछे कर रही थी। मैंने अपने सामने अपनी ही आँखों से देखा डैजी फूट–फूट कर रो रही थी। वह डेविड के पीछे अपमानित छया–सी दौड़ रही थी।

''आई हेट यू !'' (मैं तुम से घृणा करता हूँ।) डेविड उसे झटक कर कह रहा था।

''एक्सक्यूज मी, आई स्टिल आनर यू। (क्षमा करो, मैं अब भी तुम्हारी इज्जत करती हूँ।'' डैजी उसकी शरण में आयी हुई उस सूनी सड़क पर प्रार्थना कर रही थी।

डेविड उसे फटकार कर आगे बढ़ रहा था ''आई हेट यू !''

''आई लव यू।'' (मैं तुम्हें प्यार करती हूँ !)'' डैजी यह बड़बड़ाती हुई आगे निकल गयी।

मैं चिन्ता के बोझ से बहुत तेजी से नहीं बढ़ पाता था। नीरू और डैजी–– एक नारी और दूसरी डाइन ! डैजी एक नागिन के सामान। होठों पर लिपस्टिक ऐंठती हुई चाल, नागिन के दाँव–पेंच केवल डँसने के लिये, शरीर में विष फैलाने के लिये सदैव तत्पर ! वाक्जाल, शब्द चातुर्य, दिखावा, ढोंग ! दुर्गन्धि उड़ाती हुई तितली, प्रेम की संज्ञा को दूषित करने–वाली ! छिः, 'आई लव यू' का सुन्दर उत्तर, 'आई हेट यू !' मैं तुम्हें मान गया। देखो, मैं तुम से कब मिलता हूँ ! मैं अब फिर दूसरे चौराहे से मुड़ रहा हूँ। मुझे शक्ति देना डेविड ! अपमानित पुरुष अन्तिम बार नमस्कार कर ले, यही अस्पताल रोड़ है। हाँ वही है डैजी का स्थान। अँधेरा है, तो क्या हुआ ? देख ले। डैजी नहीं है वहाँ। वह स्थान तो पवित्र है। वह नर्स है, उसके कार्य तो पवित्र हैं।

मैं घर पर पहुँच कर कुछ न कर पाया। आँगन में बड़ी देर तक निश्चेष्ट रूप से खड़ा रहा। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो नीरू अबला–सी, अलकजाल फैलाये मेरी ओर रोती हुई बढ़ी चली आ रही है। मैंने दरवाजे पर आ कर सचमुच देखा पुलिस लारी में निस्वब्ध नीरू और क्रोधित मैनेजर बैठे थे। मैनेजर ने मेरी ओर इंगित किया। मैं स्वयं नीरू तक खिंच आया। मेरे ऊपर न जाने कौन दफा लग चुका था। मैं बंदी बना कर लारी पर बैठा लिया गया। फिर मैं चला, नीरू चली और हम लोगों को पहुँचाने मैनेजर भी चला। कोतवाल से मिल कर मैनेजर अपने बँगले पर चला आया।

कोतवाल ने पैशाचिक मुस्कान से पूछा––''कहिये, आपने मैनेजर के घर डाका डालने की कोशिश की थी ?''

मैंने कहा––''जी हाँ।''

''और आप ?'' मैनेजर ने नीरू से पूछा।

वह नत–सिर, निस्तब्ध खड़ी थी।

मैंने कहा––''आप ही बताइये।''

''पिस्तौल से मैनेजर पर वार किया है इन्होंने।''

नीरू ने चीख कर सिर उठाया। कहा––''हे ईश्वर, मैं क्या सुन रही हूँ ! यह झूठा अभियोग !''

मैंने कहा––''चुप रहो नीरू, दुनिया में ईश्वर नहीं है। गरीबों को उसका नाम लेना भी गुनाह है। यहाँ केवल रुपयों को ही ईश्वर की संज्ञा मिली है।''

''आप अभी कहीं पढ़ रहे हैं ?'' कोतवाल ने पूछा।

''जी नहीं, मैं पढ़ चुका। अब उस का अनुभव कर रहा हूँ। सब बेकार हो गया। सारी शिक्षा सत्यता से दुराव, काम न करने का बहाना मात्र है। सत्यता से दुनिया और जीवन की शत्रुता सी जान पड़ती है मुझे।''

कोतवाल ने मुझे से बयान माँगा। मैंने सीधे वाक्यों में कह दिया–– ''ये नीरा मुखर्जी हैं, मैनेजर की धर्म–पत्नी। मैं इनका केवल एक परिचित हूँ। मैनेजर इन्हें कुछ दिनों से ठुकरा रहा है। मैंने मैनेजर को शाम को ललकारा, जब वह इन्हें बुरी तरह से फर्श पर घसीट रहा था। उसे एक धक्का भी दिया। उसने मुझ पर पिस्तौल का वार किया। इन्होंने मुझसे दूर रहने की प्रार्थना की पर मैंने उसे जकड़ लिया। इन्होंने जमीन पर गिरे हुए पिस्तौल को भावी आशंका के डर से उठा कर छिपा दिया। दोषी मैं हूँ, कि ये बिल्कुल निष्कलंक और निरपराध हैं ! बस, यही जानो।''

नीरू ने अपना बयान देते हुए मेरी बातों का समर्थन किया। लेकिन अंत में उसने जोर से कहा––''इस सब का कारण मैं हूँ। इसलिये दोषी भी मैं हूँ।''

''आप लोगों का कोई जमानतदार ?''

''कोई नहीं।''

''कोई नहीं।'' नीरू ने भी मेरे उत्तर को दुहराया।

कोतवाली में मैं नीरू, दो अलग–अलग काले कमरों में बन्द कर दिये गये। बीच में लौह–सींखचे।

''जीवन सत्य है न नीरू ?'' मैंने सींखचे से झाँक कर पूछा।

''नहीं, कटु पदार्थ।'' उसने उत्तर दिया।

''तब संसार में रोना, पलकों में आँसू लाना जघन्य पाप है। आज से नीरू तुम्हें भी बदल जाना होगा।''

''क्यों ?'' उसने निश्चेष्ट भाव से पूछा।

''हम लोग बन्दी है। संसार से अलग, साधारण आदमी से भिन्न होता है बन्दी। तुम्हारे शब्दों में उसे कटु पदार्थ की भूमिका में आना होता है।''

''आप आज इतने क्यों भावुक हो रहे हैं ?''

''और कोई चारा ही नहीं। कल सुबह से तो हमें जेल की अलग–अलग कोठरियों में, सुदृढ़ प्राचीरों के बीच रहना होगा नीरू। तुम अलग, मैं अलग।''

नीरू चीख उठी––''अलग–अलग ?''

''हाँ, यही तो है बन्दी का जीवन। इसी से आज मैं तुमसे जी खोल कर सब बातें कर डालना चाहता हूँ। भावुकता को मूल से रिक्त कर डालूंगा। बस, काले–काले कमरें, सूखी दीवारें, पिशाच की भांति–झांकते हुए दो–एक जंगले। कटु पदार्थ की जीवन के साथ। आँखमिचौनी क्या बीच के ये लौह सींखचे टूट नहीं सकते ?''

''नहीं, तोड़ना असम्भव है इनका।''

नीरू बैठे–बैठे थक–सी गयी थी। 'अब कितनी रात होगी ?' मैं पूछने जा रहा था। तब तक पहरे के सिपाही ने चार का घंटा बजाया। मेरे कान खड़े हो गये।

''नीरू केवल दो घण्टे शेष हैं।''

''किसमें ?''

''जब हम तुम यहाँ से चल कर स्थानीय जेल में अलग–अलग हो जायँगे।''

''क्या फिर कभी न मिलेंगे ?''

''फिर मिलना नियति के हाथ है।''

''तब ?''

नीरू को मैंने देखा वह सींखचे से सटी, मुझे उन्मुक्त नयनों से देखती हुई खड़ी थी। मेरी आँखों में कुछ निद्रा तैर रही थी। उसने करुण स्वर से पुकारा–– ''अब तो एक ही घंटा बचा है।''

मैं खड़ा हो गया ठीक नीरू के सामने, इस पार सीखचों से सट कर। मेरे हाथ उस पार न जा सके। नीरू के पतले होंठ बर्त्तुल हो कर सीधे बढ़ आये थे। फिर भी मेरे होंठ उनसे न मिल पाये। वह छटपटाती रही। हम एक–दूसरे को स्पर्श तक न कर पाये। मैंने उदास हो कर बाहर देखा, सवेरा होने जा रहा था। नीरू ने फिर कहा–– ''अब कितना समय शेष है ?''

''नीरू ! नीरू ! मैं अपनी समस्त स्थूलता से सींखचों का परिरम्भ कर रहा था।''

नीरू की स्निग्धता उस अँधेरे में लौह सीखचों को भेद कर मुझ पर फैल गई थी।

दो पिपासित अधरों के प्रणय–गीत विवशता में मौन हो गये। शांत अधरों के मिलन–विन्दु पर कुछ खो–सा गया। नीरू ने करुणतम स्वर में कहा––''कितने क्षण शेष हैं ?''

प्रहरी ने छः बजाया। मैं कड़े फर्श पर लेट गया। उनींदी–सी मुझे वह देखती रही।

————————

तेरह

निरभ्र आकाश के एक किनारे से कोकिल की तान आई। मैंने सोचा, कोकिल को उन्मुक्त आकाश मिला है, और मुझे जेल के बिल्कुल किनारे काली एक छोटी–सी कोठरी। मैं बन्द हूँ। कमरे की कालिमा ने जैसे कहा––''हाँ चुप रह। नीरू न जाने किस कोठरी में होगी ! ''छत के जालों ने फटकार कर कहा––'जान कर क्या करोगे ? तू कब तक यहाँ रहेगा ?'

मैं सोचने लगा, 'मुझे इस जीवन में क्या मिला ? केवल–भ्रम, मृग–तृष्णा !' जेल की ऊँची दीवार बोल उठी––'मुझे क्यों नहीं देखते ? संसार से वीतराग बनी एक स्थान पर स्थिर, अचल खड़ी हूँ ! आगे बढ़ना और आनन्द को खोजना महा पाप है ! मैंने उत्तर दिया––'ठीक कहते हो ! मेरी चम्पा सचमुच तब तक स्थिर थी, जब तक मैंने उसके पलक सम्पुट में आँसू छलकते ने देखे। वह सती–सी, अनन्त प्रतीक्षा लिये खड़ी रही। किन्तु ज्योंही वह आगे बढ़ी, जगत के कटु पदार्थ ने उसे मरोड़ डाला !'

मैं उधर से मुंह मोड़, दरवाजा से आगे देख रहा था। बरामदा––उसके आगे हरा–भरा–सा छोटा–सा मैदान बंदियों के कमरे से घिरा हुआ। मैंने सोचा, 'क्या मेरे पैर वहाँ जा सकेंगे ?' कमरे ने आदेश दिया––'करो न चिन्ता एकाकी मेरे अंक में। खूब चिंतन करो। सारी समस्याओं को एक बार फिर से सोच डालो। बन्दी होना पुण्य–फल है, पाप नहीं।' बरामदे ने जैसे कहा––'तुम्हें टहलने को मिलेगा। मैं सूनी रात्रि में तुम्हें किस्से सुनाऊँगा। आखिर मेरा भी तो कुछ अधिकार है तुम पर।' पीछे से चहारदीवारी ने सचेत किया––'तुम्हें यहाँ आना पड़ेगा। खेत गोड़ना, पेड़ों में पानी देना, तथा विभिन्न कार्य करने होंगे।' अन्य बन्दियों के कोलाहल ने कहा––'गालियाँ सुनने को मिलेंगी पुरस्कार में। समझ गये !' सब को सुन कर मैं चुप हो गया। अन्त में मेरे समीप मेरे लोहे के तसले ने मानो कहा––'मैं तुम्हारे साथ हूँ।' मैंने उसे हँस कर उठा लिया। एकता और समता की प्रतिमूर्ति–सा लगा वह मुझे।

मेरे तसले में खाना डालते हुए वह खूंखार आदमी बोला––''कल सुबह खेत गोड़ने चलना है।''

''और अगर खाना न खाऊँ ?'' मैंने पूछा।

''इससे मतलब नहीं। यहाँ खाना केवल जीने के लिये दिया जाता है। तुम्हें सुबह काम पर चलना होगा।''

''बिना मुकदमे में दोषी ठहराये और जेल की अवधि बताये मुझे कोई काम पर नहीं ले जा सकता।'' मैंने खाना छोड़ कर कहा।

''बेकार की बक–बक मत करो। मैं तुम लोगों का बाप हूँ। यह मेरा बीसवाँ साल है इस जेल में। समझ गये न। मैं भी एक कैदी हूँ।''

''कैदी ?''

''और क्या !''

''मुझे माफ करना भाई, मैं काम पर चलूंगा।''

वह चला गया होंठों पर क्षमा की मुस्कान बिखेर कर। उसके कटु शब्दों मेरे कान में गूंज रहे थे। वह कैदी और रसोईदार ! मैं अपनी कोठरी में बैठा उसकी बात सोच रहा था। अगर वह फिर मिलता, तो मैं एक बात पूछता उससे। लेकिन कौन–सी बात ?

थोड़ी देर के बाद मैंने उसे दूर कोने के कमरे के सामने हाथ में एक लैम्प लटकाये देखा। मैंने जोर से पुकारा। वह उस समय किसी को बराबर बुरी–बुरी गालियाँ दे रहा था। मैं पुकारता रहा। अंत में लौटते हुए उसने पूछा––''क्या है जी ?''

''भाई, एक बात बताना जरा।''

''पूछो जल्दी।''

''मेहरबानी करके पता लगा दो, औरतों के विभाग में कोई नीरू नाम की स्त्री है !''

''चल–चल, कायदे से रह।''

''मैं तुम्हें इसके लिये इनाम दूंगा भाई।''

''तुम्हारे पास रुपये हैं ?''

''हो जायेंगे।''

वह निरुत्तर हो कर चला गया। मैं नीरू की सुधि लिये फर्श पर लेट गया। बरामदे ने कोई कहानी नहीं सुनाई। झींगुर दिमाग खा डाल रहे थे।

प्रातःकाल वही हाथ में मोटा बेंत लिये, सब को गाली दे–देकर काम पर ले जा रहा था। मैं उसे बराबर देख रहा था। जाते हुए कैदियों को देख कर मैं सिकुड़–सा गया। उनमें से एक बँधी हुई आवाज आयी––''इस को क्यों नहीं.....?''

किन्तु आदमी ने मेरी ओर शायद देख कर भी नहीं देखा।

कैदियों का झुण्ड काम कर रहा था। आपस में गाली दे–देकर, हँस–हँस कर, गा–गा कर, बेंत के प्रहार सह–सह कर काम में लगा हुआ था।

लगातार चार दिनों तक यही देखा मैंने। न जाने कैसे नेताओं ने इसी जीवन में मोटी–मोटी किताबें लिख मारी होंगी ! मैं यही सोचने में हैरान था। झरोखे से एक टूटती हुई आवाज आयी––''उन्हें ''ए'' क्लास मिला था।'

मैंने उस आवाज से पूछा––''और मेरी नीरू को ?''

लेकिन कोई उत्तर न मिला।

\+ + +

''कल तुम्हें काम पर चलना होगा।'' उसी काल–पुरुष ने मुझसे कहा––''चार दिनों तक मैंने तुम्हें छोड़ रक्खा था।''

मेरी आँखें सजल हो गई थी। भैया, भाभी, रेखा, डेविड, डैजी, लिली, चम्पा, कैप्टिन, मेरी साइकिल, बच्चा, मैनेजर आदि मेरी तेईस वर्ष की समस्त चेतनाएँ एक क्षण में ही मेरी आँखों के सामने नाच उठीं।

''रो क्यों रहे हो ?'' उसने पूछा।

''कोई बात नहीं, मैं चलूंगा काम पर।'' मैंने भरे गले से जवाब दिया।

''हाँ, मैंने जमादारिन से पता लगवाया है। नीरू नाम की स्त्री तो तुम्हारी साथ ही जेल में आयी थी।''

''हाँ–हाँ, वही। कहाँ है वह ?''

''क्या करोगे जान कर ?''

''नहीं–नहीं तुम कितने सज्जन हो सचमुच ! मैं कुछ दिन बाद बताऊँगा तुम्हें।''

''नहीं, बताता क्यों नहीं ?''

''उसके पास एक पत्र पहुँचाना है।''

''पागल कहीं के, मुझे भी मारना चाहता है।''

वह न जाने क्या बड़बड़ाता हुआ आगे बढ़ गया।.....

मैं काम पर जाने लगा। मैंने देख लिया, मेरी दुनिया कितनी लम्बी–चौड़ी है ! मुझे सन्तोष हो गया। फिर भी नीरू के लिये मैं हरदम उस बूढ़े कैदी से गालियाँ ही पाता रहा। मुझे उन गालियों में एक सुख मिलने लगा।

न जाने कितने दिनों के बाद एक सिपाही मुझे लेने आया। उसने बताया, कोई मुझसे मिलने आाय है। शायद भैया होंगे। नहीं, रेखा बहिन, नहीं–नहीं, वह अकेली कैसे आयेगी ? तो मैनेजर, या चम्पा या डेविड ? पता नहीं।

मैं चला जा रहा था। दूसर से देखा, डेविड अकेले उस कमरे में मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। मिलने के पहले मेरी तलाशी हुई। डेविड फिर भी हँस रहा था। मुझे लज्जा आ रही थी। पर मिलते–मिलते उसका चापल्य गम्भीरता में परिणत हो गया। मुझे उससे गले मिल कर न जाने क्या मिल रहा था।

डेविड ने मुझे बाहरी दुनिया की खबरें सुनायीं। मैनेजर की सब चालें बतायी। मेरे मुकदमें में डेविड पैरवी कर रहा था। उसने दिल्ली चम्पा के पास सूचना भेज दी थी। वह बार–बार कह रहा था, कि वह हम लोगों को छुड़ा लेगा।

मैंने कहा––''नीरू से भी मिल लेना।''

उसने हँस कर कहा––''अच्छा।''

डेविड को मैं नहीं छोड़ना चाहता था। पर उसने मुझ से अलग होते हुए कहा––''हम फिर मिलेंगे !''

जाते–जाते उसने उस आदमी को मेरे सामने कुछ रुपया दे कर न जाने क्या कहा।

डेविड ने घूम कर मुझे देखा, और फिर दस रुपये मुझे भी दे कर वह चला गया, अपने व्यक्तित्व की छाप जेलखाने पर छोड़ कर। इस समय मेरी तलाशी न हुई। रुपये ने मुझे बचा लिया शायद ?

वह बूढ़ा कैदी आया। मैंने गम्भीरता से पूछा––''पत्र नहीं पहुँचाओगे ?''

उसने डाँट कर कहा––''चुप रहो।''

मैंने कमीज के नीचे से उसे दो रुपया दिया। उसने उसे फेंक कर कहा––''मैं जान देने नहीं जाऊँगा।''

मैंने तीन और मिला दिये। उसने मुझे एक रोटी और दे कर कहा––''अच्छा देखूं, अगर कुछ इन्तजाम हो जाय !''

''मुझे कुछ कागज और एक पेंसिल ला दो।''

उसने उसी रात को न जाने कहाँ से एक पूरी कापी और एक पेन्सिल मेरे कमरे में ला कर फेंक गया। रात्रि को मैं उसे देखते ही भावी आशंका से काँप उठा था।

मैंने नीरू के नाम पत्र लिखा।

'मेरी नीरू !

मैंने न जाने किस अज्ञात प्रेरणा से तुम्हारे नाम के पहले 'मेरी' जोड़ दिया। क्षमा करना। मैं कैदी हूँ न ! और तुम भी ! पर यक्ष तथा उसकी प्रिया की भाँति नहीं, कि एक हिमाचल के उच्च शिखर पर और दूसरी सुदूर अलकापुरी में। फिर

भी यदि यह पत्र तुम तक पहुँच जाय, तो मैं इसका मूल्यांकन यक्ष द्वारा भेजे गये ''मेघदूत'' के साथ करूँगा। मैं अपनी खिड़की पर बैठ कर तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूँ। तुम अवश्य अपनी खिड़की से झाँक–झाँक कर इस दुर्निवार चहार–दीवारी के उस पार की दुनिया की याद करती होगी। बाहर तुम्हारा मैनेजर होगा, वह बच्चा, तथा बहुत दूर कलकत्ता नगरी में खोया हुआ तुम्हारा घर भी। तुम मुझे हरदम याद आती हो। तुम्हारी काली–काली बड़ी आँखें, स्निग्ध, गौर वर्ण, कुटिल भँवें, लम्बी नासिका और.....हाँ, ठीक अजन्ता की प्रतिमूर्ति–सी तुम्हारी आकृति। अपलक निरभ्र आकाश को देखती हुई तुम्हारी समस्त प्रासाधन और वेश–विंयास की मधुर ज्योति इस काल–कोठरी को जगमगा देती है। मैं जब बाहर काम करने निकलता हूँ, तो इसी कामना से उस कड़ी धूप में रह पाता हूँ, कि तुम्हें इस कठोर दीवार को भेद कर किसी प्रकार देख लूं। पर तुम कहीं दिखायी नहीं पड़तीं।

डेविड कल आया था। वही डेविड मेरा साथी। वह तुम से भी भेंट करेगा। मैंने उससे कहा है। तुम सब हाल उससे कह देना कि कैसी हो, किस प्रकार हो !

अब कठोर यथार्थ से खेल रही हो न ? मैं कैदी हूँ। तुम भी तो कैद में हो, यही मेरे लिये महान दुःख की बात है। शायद इसका प्रायश्चित्त मैं जीवन भर न कर पाऊँगा। डेविड मुकदमे की पैरवी कर रहा है। चम्पा और कैप्टिन के आने की सम्भावना भी है। मैंनेजर ने बहुत झूठ–मूठ अभियोग लगाया है हम दोनों के ऊपर। ईश्वर उसे सद्‌बुद्धि दे। बच्चे को ईश्वर आनन्द से रक्खें। तुम्हारा सलोना नारीत्व तथा मातृत्व अमर हो। तुम अमर हो। मेरा तुम्हारा संयोग अमर हो। सब सुधियाँ अमर हों। मैं तुम्हें पत्र लिख रहा हूँ न ? हाँ ठीक है, तुम्हें मैं न जाने कब देख पाऊँगा ? तुम्हें भी कहीं से यदि कलम–कागज मिल जाय, तो पत्र लिखना। जो आदमी पत्र पहुँचायेगा, वह तुम्हारा पत्र भी मुझे ला कर दे देगा।

बस, और कुछ नहीं। तुम्हें मेरा प्यार। नहीं–नहीं, बल्कि एक बंदी का एक बंदिनी को प्यार !'

दोपहर को मैंने अपने तसले को छुआ तक नहीं। भोजन लाने वाले ने मुझे गाली देकर चेतावनी भी दी, फिर भी मुझ से नहीं खाया गया। पत्र लिख कर शायद मेरा पेट भर गया था। सहसा मुझे किसी के चिल्लाने की आवाज मिली। वह जानवरों की भाँति चिल्ला रहा था।

मैंने उस आदमी से पूछा––''यह क्या है ?''

''पाँच आदमियों को बेंत की सजा मिल रही है !''

''कितने–कितने बेंत ?''

''जब तक पीठ न कट जाय।'' यह कह कर वह चला गया।

बेंत की सजा कैदियों के हाथ–पैर बाँध कर। मुझसे एक ही की चिल्लाहट नहीं सुनी जा रही थी, फिर अभी पाँचों मिल कर चिल्लायेंगे। लपलपाते हुये बेंत तेल में तर और खूब तान–तान कर पड़ रहे थे कैदी की पीठ पर। अगर मेरा पत्र पकड़ा गया, तो मुझे भी क्या वही बेंत पड़ेंगे ? और नीरू को.....? नहीं, हम लोगों के लिये नहीं हैं ये.....

शाम तक उनकी चिल्लाहट बंद न हुई। मैं सो रहा था। भीगे फर्श पर नींद नहीं आ रही थी। बरामदे ने जैसे मेरे कमरे से कहा––'आप अतिथि से पूछो, कितनी कहानियाँ सुनेंगे ! बेंत की कहानी, लाठी–चार्ज की कहानी, भूख से तड़पाने की कहानी, फाँसी पर झूलने की कहानी, किसकी–किसकी कहानी ? और कितनी ?'

मैं जाग पड़ा। सारा शरीर काँप उठा। मेरे रोंगटे खड़े हो गये। मैं मुख ढक कर फिर सोने की कोशिश करने लगा। मेरी हिम्मत न हुई, कि मैं और कुछ सुनूं या सोचूं !

\+ \+ \+

नीरू का पत्र नहीं आया। मैं नित्य उस काल–पुरुष से पूछता था। वह उत्तर में गाली दे कर चला जाता था। मैं दोपहर के बाद काम से लौट कर बहुत उदास सो जाता था। बाहर से कोई सूचना नहीं मिल पा रही थी। तो क्या चम्पा मुझे भूल गयी ? वह अभी तक क्यों नही आयी ? वह गर्भवती है, शायद चार महीने की उसकी अवधि बीत रही होगी। मैं अपनी खिड़की से उस उत्तुंग चहारदीवारी की निस्सारता तथा स्थिरता देख रहा था। वह कभी–कभी मानो हँस पड़ती थी। थोड़ी देर के बाद वार्डर के साथ वह काल–पुरुष आया। मुझे विज्ञप्ति मिली, कि एक स्त्री एक फौजी व्यक्ति के साथ मुझसे मिलने आयी है। मैंने कहा––''अरे चम्पा !''

मैं चम्पा से मिला, उसके कैप्टिन से मिला। चम्पा ने रोकर मेरी नीरसता को सरस बनाया। कैप्टिन ने आश्वासन दिया। मैं चम्पा को केवल देख रहा था। वह मुझ से बहुत–सी बातें पूछ रही थी, पर मैं मूक, निर्निमेष उसे उसी प्रकार देखना चाहता था। कैप्टिन बाहर चला गया। शायद अब वह मुझे देख चुका। उसके वहाँ से जाने से मुझे सन्तोष ही हुआ।

''आनन्द से हो न चम्पा ?'' मैंने प्रश्न किया।

''क्यों नहीं बाबू जी !.....आप को कैदी.....'' इसके आगे चम्पा का मर्मर उसके आँसुओं में भीग कर अधर–विंदु पर खो–सा गया। वह मुझे देख कर केवल रो रही थी।

''चम्पा, तुम सदैव से मुझे झकझोर कर बल दिया करती थी। लेकिन आज यह निर्बलता क्यो ?''

''अब आपको कठोर और बहुत आगे बढ़ते देख मैं निर्बल हो उठी हूँ।''

''चम्पा, तुम निर्बल !''

''हाँ, बाबू जी, बहुत निर्बल, देखिये न मेरी बाँह.....'' चम्पा ने अपनी किसलय–सी कोमल अँगुलियों सहित अपनी मृणाल–बाँह को मेरे कंधे पर टेक दिया। फिर उसके तरल आँसू टप–टप कर जमीन पर गिर पड़े। आँचल से आँखें पोंछते हुए उसने कहा––''बाबू जी, मैं आपके साथ रहूँगी।''

''अरे, यह क्या ? मैं जल्दी छूट जाऊँगा।''

''समय हो गया, चलो, अब निकलो यहाँ से।'' सिपाही ने कहा। उधर कैप्टिन ने भी पुकारा।

मैंने चम्पा को फिर जाने के लिये कहा; पर वह जाना नहीं चाहती थी। सिपाही ने फिर जोर–से निकलने के लिये कहा।

चम्पा बाहर की ओर खिंचती हुई गतिहीन दशा में एक विवशता की दृष्टि डाले ओझल हो गयी। सिपाही ने मुझ झटक कर लौह द्वार के अन्दर ढकेल दिया। चम्पा रोती हुई चली गयी।

मैं अपनी खिड़की की राह भावात्मक लोक में देख रहा था : चम्पा कैप्टिन के साथ ताँगे पर स्टेशन की ओर चली जा रही है, यद्यपि वह जाना नहीं चाहती है। अगर जाना भी चाहती है तो नीरू को भी देख कर। वह कल की गाड़ी से दिल्ली जायगी। कैप्टिन उसे डाँट कर कह रहा है, 'देहाती कहीं की ! तुम्हें मेरे साथ चलना होगा। नहीं तो तुम्हें छोड़ कर अकेले चला जाऊँगा।' चम्पा किसी चौराहे पर मचली हुई रो रही है। उफ ! कितनी अन्तर है पहले और अब की चम्पा में !. ....संसार क्या गलत सोच लेता है !

काल–पुरुष ने सींखचों पर एक लात मारी। ''ले अपनी चिट्ठी। अब आगे मेरे मान की बात नहीं !'' वह एक साँस में कह गया।

मैंने कहा––''अब तुम जाओ !''

उसने गुस्से से पूछा––''खाना नहीं खाओगे ?''

''नहीं।''

''मर जा भूखा, मुझ से मतलब !'' और वह चला गया।

मैंने पत्र खोला। अँधेरा हो चला था। खिडत्रकी पर जा कर उसे पढ़ने का प्रयास करने लगा। मैं उस अन्धकार में घंटों उसे देखता रहा, पर कुछ पढ़ न सका। उसे लिये पाषाण–मूर्ति बना बैठा रहा न जाने कब तक, एकदम गुम–सुम। फिर न जाने कब फर्श पर ही सो गया पत्र हाथ में लिये अपने वक्ष से सटाये हुए। सबेरा हुआ। बंदियों ने आपस में गालियाँ आरम्भ कीं। मैंने प्रकाश की प्रथम रश्मि में पत्र खोला। उससे पवित्रता टपक रही थी।

'मेरे.....

सादर बन्दन।

जेल की अँधेरी कोठरी में, वातावरण की शून्यता में मैंने एकाकी होकर आपको देखा है। आपके दोनों रूपों को देख है। उन आँखों से नहीं, जिसमें कुछ रंग घुला था, कुछ मस्ती थी, कुछ और न जाने क्या था; बल्कि एक सात्विक दृष्टि से देख है। मैं आपको आरम्भ से अंत तक देख रही हूँ। मैं आपको बड़ी स्पष्ट भाषा में पत्र लिख रही हूँ। शायद इन वाक्यों से अपने पाप का प्रायश्चित्त करना चाहती हूँ। मैंने पहले आपके पुरुष को पहचाना नहीं; बल्कि उसे प्रर्वचना दी। मुझे यदि धरती को छोड़ अथाह सागर में किसी बहती हुई टहनी का संवल लेना था, तो वह टहनी आप थे। मैंने आपके पुरुष को धोखा दिया, आपका तिरस्कार किया। शायद आप इस बात को न मानें; पर यह सत्य है, एक दम नग्न और स्पष्ट सत्य और इसीलिये शायद मुझे भी किसी ने धोखा दिया, ठुकराया।

यदि आप आज्ञा दें, तो मैं अपने मातृ–उदर को चीर डालूं। उस अणु–कोष को फाड़ कर देखूं, जिसने मेरी नारी पर कलंक लगाया है। अपने साथ एक पुरुष को भी घसीटा। मैं यही कर के अपना अंत देखना चाहती हूँ। मुझे अपने से घृणा हो रही है। अपने स्त्रीत्व पर क्रोध आ रहा है। मुझे आज्ञा दीजिये !

आप कैदी हैं, मैं भी कैद में हूँ। हम लोग एक ही पेड़ के दो पक्षी हैं। ठीक एक इकाई एक दहाईपूर्ण संख्या। आप स्वर्ग की एक अमृत–बिन्दु हैं। मैं उसी से खिंची हुई एक रेखा मात्र हूँ। पवन के ताप से बराबर सूखती जा रही हूँ। आप मुझे खींच कर अपने में मिला लीजिये। मेरे व्यक्तित्व का लोप हो जाय। मैं और मेरा सारा पाप–कलंक मिट जाय। आप मेरे साथ हैं, इस कोठरी में यही एक पुण्य–भावना, इस अँधेरे में स्वर्गीय ज्योति सी चमक उठती है। आप और मैं दो नहीं, एक हैं। आपने नारी की परिभाषा को व्यक्तिगत रूप से देखा है। अतः उस परिभाषा के आधार पर मुझे क्षमा कर के अपना लीजिये। मैं उसी क्षण इस जगती से विदा ले लूंगी। मैं आपको अपवित्र न करूँगी। आपके पथ में अपने दूषित व्यक्तित्व को रख कर उसके उत्कर्ष, उत्थान, देवत्व पर अर्गला न लगाऊँगी, वरन् आपको व्यक्तित्व की गंगा में नहा कर तर जाऊँगी।

मैं किसी को दोषी नहीं ठहराती। दोषी केवल मैं हूँ। नारी को स्थिर होना चाहिये। यदि वह आगे बढ़ी, तब उसके सतत फिसल कर गिरने की जिम्मेदारी उसी पर है। मैं एक बढ़ी हुई कलंक की रेखा हूँ। मुझे मिटा दीजिये। अमर हो आपका स्नेह, आपकी सौम्यता, आपका पुरुष। अमर हो आपकी पुण्य–स्मृति। हम लोग कब मिलेंगे ? मैं अब केवल एक बार आपसे मिलना चाहती हूँ अपने निर्वाण के लिये। आप विश्वास कीजिये, मुझे इस जीवन से घृणा नहीं, स्नेह है, प्यार है। आपकी सुधि केवल किसी मरु–पथ पर अमृत–पाथेय बनी हुई है। मुकदमें के बारे में क्या हो रहा है ? आपके मित्र मिस्टर डेविड अमर हों। मित्रता की संज्ञा अमर हो। किसी बहाने मैं आपको देखना चाहती हूँ। यही मेरी हार में अंतिम विजय होगी। मैंने आज अन्तिम बार अपने आखिरी पड़ाव से पीछे का छूटा हुआ रास्ता देखा है। अब बस, आगे नहीं आपसे ईश्वर जल्द–से–जल्द से मिलाये।

आपकी––नीरू।'

मैं काम से छुट्टी पा कर रोज दिन भर में इसे न जाने कितनी बार देखता। एक–एक अक्षर को पढ़ता। नीरू को–सम्पूर्ण नारी को सामने रख कर। मुझे नीरू हर रोज कुछ नयी–सी, अनोखी–सी लगने लगी। मैं और पत्र नहीं भेज पाया। मेरे पास रुपये न थे। मैं भी जीवन का सुलझाव ढूंढ़ने लगा। कीड़ों की भाँति रेंग–रेंग कर जीना मुझे बेकार लगा।

\+ + +

जिलाधीश के इजलाम में मैं अकेला कटघरे में खड़ा था। डेविड वकील से सलाह कर रहा था। मैं उनकी ओर देख रहा था। अपने मित्र के व्यक्तित्व में न जाने क्या खोजने का प्रयास कर रहा था मैं। मेरे मुकदमे की पेशी हुई। मैं इधर–उधर नीरू को खोज रहा था। वह नहीं थी। अचानक मेरी दृष्टि मैनेजर पर पड़ी। उसके चेहरे पर एक कठोरता दिखायी दी मुझे। अंत में मैंने नीरू को अदालत के कमरे में आते देखा। वह पूर्णरूप से बदल गयी थी। वह नीचे सिर झुकाये थी। उसने मुझे प्रथम–दृष्टि में देखा, औद देखती ही रही।

मुकदमे पर बहस आरम्भ हुई। हम दोनों के बयान माँगे गये। मैंने घूम कर अपने बायें देखा। कोतवाल साहब स्वयं खड़े थे। मैंने उनकी ओर इशारा कर के कहा––''हम दोनों का बयान इनके पास हैं।''

''वही बयान ?'' हमारे वकील ने पूछा।

''जी हाँ।'' मैंने उत्तर दिया।

''आपसे और नीरू से क्या सम्बन्ध है ?'' जिलाधीश ने प्रश्न किया।

नीरू जैसे जाग पड़ी। उसके मुख पर एक तेज प्रकाश फैल गया। उसने स्पष्ट शब्दों में पूछा––''आपके सवाल का मतलब ?''

''यही, कि आप लोग दो हैं, लेकिन बयान.....''

बीच में ही नीरू बोल उठी––''हम दोनों एक हैं। मेरी और इनकी आवाज भी एक है।''

जिलाधीश चुप हो गये। सब स्तम्भित खड़े थे। बाद में फैसला देने की बात सोची जाने लगी, कि हम दोनों एक जेल में न रक्खे जायें। डेविड परेशान था मैनेजर अपनी टाई पर हाथ फेर रहा था।

मैंने अपने वकील को देखते हुए अदालत से पूछा––''क्या फैसला हो रहा है ?''

सब चुप थे। आर्डर तैयार हो रहा था। मैंने फिर पूछा। मैनेजर ने सहसा अदालत से पूछा––''अदालत में जब कि कोई फैसला लिखा जा रहा है, तो इन्हें बोलने का क्या अधिकार है ? क्या यह अदालत की मान–हानि नहीं ?''

मैंने बायीं ओर डेविड को देखा। वह क्रोध एवं चिन्ता से लाल हो गया था। मेरे वकील ने मेरी बात को कस कर पकड़ा। जिलाधीश ने कलम बन्द कर के मैनेजर को देखा। फिर उसने कड़क कर, मैनेजर को डाँट कर कहा––''सचमुच आप अदालत की मान–हानि कर रहे हैं मिस्टर घोष।''

इस पर वह भयभीत–सा हो गया, पर इससे क्या ? उसकी क्या मान–हानि ? उसे क्या रुपये की कमी है ? जेल तो उसे होगा नहीं; जेल गरीबों के लिये है। कभी–कभी जुर्माने भर हो जाते हैं अमीरों पर !

फैसला सुनाया गया। हम दोनों एक जेल से हटाये जा रहे थे। मैनेजर बाहर निकल कर अपनी कार के पास खड़ा हो गया। मैं आगे बढ़ाया जाने लगा। नीरू को केवल मुख से आगे बढ़ने का हुक्म दिया जा रहा था। वह स्थिर खड़ी मुझे देख रही थी। मैं भी रुक गया। सिपाहियों का कड़ा स्वर सुन कर हम दोनों आगे बढ़े। किन्तु फिर नीरू ने स्वयं स्थिर होकर मुझे भी स्थिर बना दिया था। वह तपस्विनी सी अपलक, स्थिर हो मुझे देख रही थी। किसी ने पीछे से मेरी पीठ पर एक डंडे से मार कर आगे ढकेल दिया। नीरू बंधन–रहित थी। वह आगे बढ़ कर बिल्कुल मेरे सामने आ गयी। मैं रुक गया––वह रुक गयी। सारा जगत रुक गया। सब की गति बन्द हो गयी। नीरू पर किसी ने एक बेंत मारा। वह चीख–सी उठी, और मुझसे आ कर एकदम सट गयी। फिर एक, दो, तीन, न जाने कितने बेंत पड़े उसकी कोमल पीठ पर। मेरे ऊपर डंडों का प्रहार हो रहा था। मार खा कर भी हम चीखे चिल्लाये नहीं। नीरू की लाचार आर्द्र पलकें मेरे मुख पर टिक गयी थीं। शायद वह गतिहीन हो कर एक अदृश्य चेष्टा से सदा के लिये मुझे देख रही थी। उसकी पलकें बोझिल थीं, फिर भी

उठी हुई थीं। वह रो नहीं रही थी। उसकी पलकों की आर्द्रता भी सूख–सी चली थी। नीरू ने मुझे कस कर जकड़ लिया था। उसकी समस्त चेतना–शक्ति मानो चाबुकों की बौछार में कही लुप्त हो गयी थी। उसकी उठी हुई पलकों में एक विराट मातृजगत झलक उठा था। फिर उन पलकों में रक्त भर–सा उठा। मैंने देखा, शायद नीरू अब..... मैं जोर से चिल्लाया। पर कोई लाभ नहीं। उसी क्षण नीरू के भुज–बंधन ढीले पड़ गये। वह गति–हीन होकर गिर पड़ी। मुझे जैसे किसी चीज की सुधि नहीं थी। बिल्कुल अशक्त, चेतनाहीन हो कर खड़ा था।.....

मैं कैदी था। मेरा सारा शरीर डंडों की मार से दर्द कर रहा था। नीरू 'प्रिजनर–हास्पिटल' में मेरे समीप एक दूसरे कमरे में कैद थी। वह किसी प्रकार दूसरे जेल में नहीं गयी। कोई उसे नहीं ले जा सका। उसने ऐसा महान सत्याग्रह किया !

बंदी का वाह्य जगत से क्या सम्बन्ध ? फिर भी वह सम्बन्ध जोड़ता है। अगर संधि नहीं, तो चोरी से, नहीं तो मिल कर के, रुपयों की सीढ़ी पर खड़े हो कर। मैंने वैसा ही किया। जेल के डाक्टर बिल्कुल मेरी उम्र के थे। डेविड के जान–पहिचानी थे और केवल एक दिन मेरी कटी हुई पीठ पर दवा बँधवाने आये थे। नीरू को प्रति दिन की सूचना मुझे इन्हीं की दया से मिलती रहती थी। नीरू अब अच्छी होती होगी। उसकी पीठ की तीन चोटें तो अच्छी हो चली होंगी। कंधे के बगल के घाव पर अभी पट्टी बाँधी जाती होगी। वह भी दो–एक रोज में ठीक हो जायगी। उसकी आँखों में जमी हुई सुर्खी अब ठीक हो गयी होगी। वह फिर अपनी चेतना में लौट आयी होगी। उस पर अब मैनेजर अवश्य दया करेगा। उसे छुड़ा देगा शायद। मैं नहीं चाहता, वह मुझे क्षमा करे। मुझे उसकी दया पर घृणा हो आती है।

मैं चौथे दिन अपनी खिड़की के सामने खड़ा इसी रेखा को बढ़ाता हुआ बहुत दूर निकल आया था, जहाँ मैं था, स्वस्थ नीरू थी, डेविड था और थी चम्पा। सहसा किसी की कटुवाणी के तीखे तीरों ने मुझे बेध दिया। वह वही पुरुष था। उसने जोर से कहा––''तुम्हारी औरत की हालत बहुत खराब है। देखना चाहते हो ? डाक्टर बाबू ने पूछा है।''

''मेरी औरत की ?''

''हाँ जी, तुम्हारी औरत, जो अस्पताल में ही पड़ी है।''

''नीरू को ?''

मैं सोचने लगा, 'क्या उतनी चोट नीरू के प्राण लेने के लिये काफी है ? नहीं–नहीं, यह नहीं हो सकता ! वह मुझे देख कर अच्छी हो जायगी बिल्कुल स्वस्थ !'

उन्हीं सिपाहियों के वर्ग के सिपाही अब भी मेरे साथ थे, जिन्होंने मेरे और नीरू के ऊपर डण्डे बरसाये थे। पर मुझे उन पर घृणा नहीं आ रही थी।

नीरू को मैंने दूर से पहचाना। मैं दौड़ता हुआ उस ओर बढ़ रहा था। मैंनेजर भी उसके पास उदास खड़ा था। वह क्यों आया ? शायद नीरू की नारी से आकर्षित हो कर वह आया है। मैंने उसे कनखियों से देखा। वह बड़ा दुखी–सा लग रहा था। शायद वह स्वयं अपने को पापी स्वीकार कर रहा था। मैंने नीरू को पुकारा। उसने कठिन चेष्टा कर के अपनी पलकों को उठाया। उसमें अब भी रक्त जमा था; पर आँसू ढुलक रहे थे उनसे। वह मुझे अंत तक देखना चाहती थी; किन्तु आँखें स्वतः मुंद गयी। मैंने उसकी सूखी हुई हथेली को देखा। उसमें शक्ति का अभाव हो रहा था। मैंने उस हथेली से और अपनी दो हथेलियों से अपना सात अंगुल का मुंह ढक लिया, खूब दबा कर ढक लिया। इतने क्षणों में ही मैंने नीरू के प्रथम दर्शन की तलहटी में पैंठ कर उसे देखा। मैंनेजर, सोफा, ड्राइंग–रूम, नीरू, वह गली का सूना घर.....इसके आगे मैं नहीं बढ़ पाया। वर्तमान नीरू भूत की नीरू का उपहास कर रही थी ! उसका नहीं, बल्कि उसकी नारी का मजाक कर रही थी !

''काश, मैं जी पाती !'' वह पीड़ा से कराहते हुए बोल उठी। ''नहीं बच्चे के लिये.....नहीं.....''

पर मैंने उससे पूछा नहीं।

मैनेजर मिस्टर घोष उसके सिरहाने दोषी–सा बैठा था।

''मैं नहीं मरूँगी।'' उसने अपनी वायीं हथेली को सीने पर रखते हुये कहा।

''सचमुच तुम नहीं मरोगी नीरू ! मैं तुम्हें जीवित रक्खूंगा। तुम्हें जीना होगा, मेरे.....'' मैंने कह दिया। फिर उसे देखने लगा। वह अपनी पलकों की ओट में न जाने किसे देख रही थी। उसकी पलकें सूज आयी थीं। मैंने उसके कन्धों को हाथ से स्पर्श किया। उसकी आँखों में संचित आँसू बरौनियों के कगारों को तोड़ कर बह उठे। मैंने सोचा, 'मानव अपने अन्तर्जगत में एकाकी रोता है। वह किसी को नहीं दिखाना चाहता अपने हृदय की चोट को !'

''नीरू, तुम स्वस्थ हो जाओगी।'' मैंने कहा।

''सचमुच ?'' वह बोल उठी।

''हाँ।''

''पर मैं अब जीना नहीं चाहती।'' उसने अंत में एक क्षीण आह भरी, और अपने अनवरत बहते हुए आँसुओं से मुझे मानो सींच दिया।

''नीरू, मैं तुम्हारे पास बैठा हूँ।''

''हाँ, मैं देख पा रही हूँ।''

''मैनेजर साहब भी बैठे हैं।''

वह चुप थी। उसके आँसू रुक गये थे। उसके शरीर में एक कम्पन हुआ और शक्ति बटोर कर उसने पूछा––''और कौन ?''

''मैनेजर।'' मैंने धीरे–से कहा।

मैनेजर उदास और चुप था।

''कौन ?'' उसने और जोर से पूछा।

मैं चुप हो गया।

''कौन ?'' उसने फिर वही प्रश्न किया मानो वह पागल होने जा रही थी।

''मैनेजर !'' मैंने अपना उत्तर फिर दुहराया।

''ओह ! तो मेरे शव के पास भी ? इसे यहाँ से निकालिये, जल्दी निकालिये।'' यह चीख कर स्वयं उठने का प्रयास कर रही थी।

मैंने उसे सँभाला। मैनेजर स्वयं वहाँ से हट गया।

''मैनेजर अब यहाँ नहीं है।'' मैंने धीरे से उसके कान में कहा।

इसी समय डाक्टर ने मुझे आज्ञा दी, कि मैं यहाँ से अपने कमरे में चला जाऊँ। सिपाहियों ने भयानक मुद्रासे मुझे देखा।

''नीरू, तुम्हें जीवित रहना होगा। मैं अपने कमरे में जा रहा हूँ !''

वह चुप थी। पर न जाने किस अज्ञात शक्ति से उसने मेरी अँगुली को जकड़ लिया था।

''नहीं–नहीं।'' उसके सूखे ओठों से यह ध्वनि आ रही थी।

नीरू बहुत दूर चल कर थक गयी थी। ऐसी थक गयी थी, कि एकदम पंगु हो उठी थी। वह समझती थी, अब वह मर जायगी। अतः शायद किसी का सम्बन्ध चाहती थी इन अन्तिम क्षणों में। उसने आजीवन जिस अमृत–कुम्भ को छुआ, वह विषपात्र निकाला; जिस हरियाली को देख उसमें तरल छाया की कामना की, वह मरुस्थली की बालू, झंझा, मृगतृष्णा बन गया। ज्ञान–पक्ष ने उसे सदैव ही जलाया, पराजित किया। अब उसका कोमल हृदय–पक्ष प्रबल हो उठा था। नीरू मुझे पकड़े हुए एक स्त्री, केवल स्त्री प्रतीत हो रही थी, ठीक चम्पा की भाँति, जो एक पग अकेले नहीं चल सकती। नीरू के पथ की यह आखिरी मंजिल थी। यहाँ वह स्थिर हो कर बैठ जाना चाहती थी। अकेली नहीं, एक पुरुष के साथ, जो उसी की भाँति न जाने कितनी मंजिलों को पार कर थक गया है। एक पथ के दो अनजान बटोही अब आगे–पीछे नहीं चलेंगे, बल्कि एक–दूसरे के सम्बल बन कर चलेंगे। नीरू शायद अपनी अन्तिम मंजिल पर टिक गयी थी; अतः वह मुझे भी आगे नहीं जाने देगी। मैंने अपने को देखा, मैं बंदी था। मेरे आगे–पीछे सिपाही लगे हुए थे। नीरू के कंकाल को देखा मैंने, उसमें केवल क्षीण–सी ज्योति शेष थी। वह घुल–घुल कर जलती हुई बुझने जा रही थी। मैंने धीरे–से पुकारा––''नीरू !''

उसने अपनी अँगुलियों को और शक्ति दे कर कहा––''नहीं–नहीं।''

मैंने कहा––''मैं कैदी हूँ।''

फिर वह बोली––''नहीं–नहीं।'' और काफी देर तक अपने सिर को हिलाती रही।

मैं नीरू के अणु–अणु में एक चित्र देख रहा था। एक पवित्र स्त्री की सुगन्धि पा रहा था। उसने मुझे नीरूमय बना लिया था, मेरे पुरुष को समेट कर अपनी मंजिल पर स्थिर कर दिया था। पीछे से मुझे कोई गाली दे रहा था; पर मैं बदल चुका था। सहसा मुझे अनुभव हुआ, मेरी पीठ पर किसी ने ठोकर मारी। मगर मैं काँपा नहीं। नीरू चिल्ला उठी––''अरे, फिर वही कोड़े। वही सिपाही, वही मैनेजर का षड्यंत्र !''

मैंने उसे सँभाला और सिपाही से याचना की––''मुझे मारो, जी भर कर, लेकिन केवल इनको पता न चले, नहीं तो इस अमानुषिक प्रहार के वेग में इनका जलता हुआ प्रदीप बुझ जायगा।''

'इस दीपक की अन्तिम लौ कहीं बुझ न जाये, उसकी लय कहीं सम पर आकर अनन्त में विलीन न हो जाय ! दो बटोही दो पथ पर.....।' मैं सोच रहा था। सिपाही ने मुझे झटका दे, नीरू से दूर कर दिया। वह गिड़गिड़ा कर रह गयी। उसने मुझे देखा नहीं। मैं बेतों की बौछार में सहता हुआ उससे दूर चला जा रहा था। हास्पिटल गेट से बाहर होते हुए मैंने नीरू की एक कराह सुनी। वह नीरवता में टकराती हुई मेरे पास आयी थी। मैं रुक गया, पर दूसरे ही क्षण सिपाही के धक्कों ने मुझे आगे चलने को बाध्य कर दिया गया।

तो क्या मैं अब नीरू को नहीं देख सकूँगा ? किसी भी मूल्य पर नहीं ?..... केवल रुपये.....हाँ, रुपये की सीढ़ी पर पैर रख कर दुनिया उतने ऊँचे कुतुवमीनार पर से , वायुयान पर से गरीबों की अधूरी दुनिया की घृणा की दृष्टि से देखता है !

मैं बंदी हूँ। डेविड, मेरा मित्र आज मुझ से कितनी दूर ! चम्पा न जाने कहाँ, कैसे इतनी दूर चली गयी ! मरुस्थली में भटकते हुए मृग के लिये सारी दुनिया मरु, झंझा प्रतीत होती है।

मैं इस बार अपनी जेल की काल–कोठरी तक फिर पहुँचा दिया गया न जाने कैसे ?'' मैंने सीखचों को देखा, काली खिड़की को देखा, सब वस्तुओं पर फिर एक सूखी निगाह डाली। मुझे वहाँ के अणु अणु में नीरू की छाया, उसके कंकाल की ध्वनि सुनायी पड़ रही थी।

सिपाही मुझे कोठरी में कर लौटने वाले ही थे, कि सहसा कोई दौड़ता हुआ मेरे दरवाजे पर आ कर रुक गया। उसने धीरे–से न जाने क्या कहा। मेरा रोम–रोम मौन होकर सुनने लगा। उसने मेरे फाटक के सींखचों का ताला खोलते हुए कहा, कि मुझे हास्पिटल वापिस जाना है।

''अब क्यों वापिस ले जा रहे हैं ये लोग मुझे ? मेरे ऊपर मार क्यों पड़ी ? मुझ पर क्यों अकारण मार पड़ी ? नीरू की वेदना को किसने बढ़ाया ? इसका हिसाब कोई रखने वाला है ? इसका भी कोई प्रतिशोध लेगा ? नहीं, कुछ नहीं। कीड़ों के लिये कुछ नहीं है। वे केवल रेंगते हैं। उनकी गति से केवल रेखाएँ बनती जाती हैं, उसे कोई भी मिटा सकता है––अपने पैरों से कुचल कर।'' मैं एक क्षण में ही सोच गया !.....

नीरू की आँखें बंद थी। आखिर उसने मुझे यहाँ बुला ही लिया न। लेकिन किस मूल्य पर ? शायद अपनी आहों के मूल्य पर, जिनसे सारा जगत हिल जाता है, मनुष्य काँप उठता है।

डाक्टर आदि नीरू के समीप थे। उसका घायल हाथ दरवाजे की ओर फैला था शायद मुझे पकड़ने के लिये। मैंने अपना दायें हाथ उसकी हथेली में पकड़ा दिया। नीरू ने आह भर कर उसे जकड़–सा लिया, जैसे अथाह समुद्र में डूबते हुए को तिनके का सहारा मिल गया हो ! नीरू काँप रही थी। उसके बन्धन कभी–कभी ढीले हो जाते थे। उसकी साँसें तेज चल रही थीं। डाक्टर ने इन्जेक्शन देना बन्द कर दिया था। सभी चुप थे। मैंने स्पष्ट रूप में देखा, नीरू गहन मरुस्थली की अनवरत झंझा में पड़ गयी है। उसकी नाक, कान, मुंह, समस्त वाह्य इन्द्रियाँ बालू के कणों में भर गयी हैं। वह मुझे देख रही हैं, पर बोल नहीं पा रही है। केवल हाथ उठा कर मुझे सहारा देने के लिये बुला रही है। मैं स्थिर हूँ। अपनी आँखों से उसे बुझता हुआ देख रहा हूँ। मैं, उसके साथ का बटोही, उसे सहारा देने वाला, उसे प्यार करने वाला.....लेकिन अब कुछ भी नहीं, सब बेकार।

डाक्टर वहाँ से बाहर चला गया। मैं नीरू के मुख को झुक कर देख रहा था। उसके स्थल मुख–मण्डल पर बहुत समीप से अपलक दृष्टि गड़ाये थे। वह अपने अन्तर्जगत में न जाने क्या देख रही थी। शायद अतीत के सपने, अपना बंग प्रदेश, अपना पति, अपना बच्चा, मैनेजर, ताजमहल के सैर–सपाटे, काश्मीर की हरी–भरी घाटियाँ, उपत्यकायें, मुझे अपनी अन्तिम मंजिल, इन्हीं सब को सुधि आ रही थी। उसे।

मैं उसकी सूजी हुई पलकों को देख रहा था, न जाने कितनी देर से। मैंने धीरे से उसकी बंद पलकों को स्पर्श किया। उनमें से आँसू नहीं निकले। मैंने उसे पुकारा; किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला मुझे। मेरा मुंह बरसते हुए बादलों की भाँति नीरू के मुख के समीप खिंचता चला जा रहा था। मेरे मुंह से धीरे–धीरे 'नीरू' की संज्ञा अनवरत रूप में निकलती जा रही थी। उसने न जाने कैसे मुझे टटोला। ऊपर हाथ उठा कर मेरे सिर को जकड़ कर अपने मुख पर रख लिया। उसमें से ताप की अंसख्य रेखायें निकल रहीं थीं। मैंने शीतलता अनुभव की।

नीरू का शरीर काँप रहा था। वह अपनी सारी शक्ति बटोर कर अपनी वाणी पर लाने का प्रयास कर रही थी। कुद कहना चाहती थी शायद। उसने कम्पन की चरम सीमा पर अपनी पलकों को अधखुला कर दिया। उस पर पीड़ा का बोझ था।

मैंने अपना मुंह उसके चेहरे से हटा कर धीरे–से कान के पास कहा––''नीरू ! नीरू !''

उसने अपनी पलकों को मेरी ओर उठाया। मुझे रक्त–भरे नयनों से देखा। फिर, मुझे अपने हाथों से अपनी ओर खींच लिया। मैंने सान्त्वना दी––''नीरू ! नीरू !''

''जी !'' उसने अत्यन्त क्षीण स्वर में उत्तर दिया।

''कैसी तबियत है ?''

उसने सिर हिलाते हुए अपनी समस्त शक्ति के वेग से कहा––''अब मैं जा रही हूँ। अन्तिम समय में केवल आपको देखना चाहती थी, सो देख लिया। मुझे किसी अन्य को नहीं देखना है, और न किसी से कुद कहना है।''

इसके उपरान्त वह मूक हो गयी। फिर और अधिक काँपने लगी। उसके भुज–बन्धन ढीले हो चले। पर वह उसी भाँति मुझे देख रही थी। मैं उसके सिर पर हाथ फेर रहा था। उसके कंठ से कुछ अस्फुट–से शब्द आ रहे थे। मैंने सुना, वह कह रही थी––''मेरे मरने के बाद केवल मैनेजर से कह दीजियेगा कि नीरू उस बच्चे की माँ थी। मैं चली.....''

इसके उपरान्त मैंने कुछ नहीं सुना। केवल देखा, उसकी धँसी हुई आँखों में अविरल आँसुओं का कम्पन ! वह धीरे–धीरे आँख मूंद रही थी। नीरू मृत्यु की प्रबल झंझा में अकेली पड़ी थीः उसके साथ कोई नहीं था। मैं दूर से केवल

लाचार देख रहा था। वह झंझा में गिरती–पड़ती बढ़ रही थी। इसी समय अन्तिम झोंका आया। बस, एक हिचकी और सब–कुछ समाप्त। मृत्यु ने धवल चादर से उसे ढक लिया। उसकी खुली हुई पलकें मेरी ओर थीं। वे स्थिर थीं, मानो साधना में सदा के लिये वैसी बना दी गयी हों ! इसी समय दौड़ता हुआ मैनेजर आया। उसने आते–ही–आते पूछा––''नीरू कैसी है ?''

मैं चुप था। केवल उसकी स्थिर पुतलियों के द्वारा से उसके अन्तर्जगत में जा कर नीरू को फिर से देख रहा था। मैनेजर ने मुझे झकझोर कर बच्चों की भाँति पूछा––''कैसी है ?''

मैंने खड़े हुए मैनेजर को देखा, और फिर कहा––''नीरू अब नहीं है। पुरुष ने अपनी प्रवञ्चना से उसकी स्थूलता को छू कर अपवित्र किया है, वासना की मेखला बनायी है––वह उसे त्याग कर अनन्त में विलीन हो गयी !''

मैंनेजर ने समीप से उसे देखा।

मैंने चारपायी पर रक्खी एक चद्दर से उसे ढक दिया। मैंनेजर उदास सामने शव की ओर देख रहा था। मैंने धीरे–से कहा––''नीरू ही मेरे दिये उस बच्चे की माँ थी।''

''नीरू बच्चे की माँ ?'' वह आश्चर्य से चीख उठा।

मैं चुप था।

————————

चौदह

अगर चम्पा मेरे पास होती, तो मैं पिछली अधूरी कहानी पूरी कर देता। वह उत्सुकता से पूछती, 'बाबू जी, तब क्या हुआ ?' मैं गम्भीर होकर कह देता, 'उस पुरुष पक्षी ने उस चिड़िया को मार डाला।' वह प्रश्न करती, 'खुद ही ?' मैं कहता, 'हाँ और क्या।'.....

नीरू के मरने का पुरस्तकार मुझे मिला। मैं जेल से छूट गया। मैनेजर ने नीरू को कितने सस्ते पा लिया था और कितने सस्ते बेंच डाला !

रिहा होने पर वह मुझे अपने बँगले पर ले गया। चाह कर भी पहले मैं डेविड से नहीं मिल सका। बहिन रेखा को नहीं देख सका। मैं एक पवित्र लोक से लौट कर, फिर उस जगत में आ पहुँचा, जिससे मुझे घृणा थी। मैंने सब से पहले केवल उन दोनों को देखा, जो मेरे लिये अभिशाप थे, जिनका चेहरा तक देखना मेरे लिये पाप था। वही मिस्टर घोष और तोतली वाणी में मुझे हाथ जोड़ कर नमस्ते करने वाला रोनू, नीरू का रक्त, उसकी साधना का पुण्य–फल, उसका अमृत पाथेय, उसके वैधव्य का सुहाग !

मैंने उसे आशीर्वाद दिया, शीघ्र मर जाओ; पर मैं काँप उठा। मुझे लगा, मानो नीरू हाथ जोड़ कर कह रही है, ''क्षमा कर दीजिये, मुझे भूल जाइये, इसको इसके नाम पर छोड़ दीजिये। मैनेजर ने प्यार से इसका नाम रोनू रक्खा है, शायद मुझे ही जीवित रखने के लिये!'

मुझे डेविड से मिलना था। उसकी याद मुझे बहुत सता रही थी। मैनेजर न जाने क्यों मुझसे कह रहा था, कि वह डेविड को यहीं बुला देगा। वह मुझसे क्यों इतना प्रेम करने लगा था ? नीरू के नाते ? अपने पाप के नाते ? उसके मातृत्व को जान कर ? नहीं, यह सब झूठ है। इसी बँगले के समीप तो मेरा भी बँगला है। वहाँ मेरी भाभी हैं, भैया हैं, बहिन रेखा है। इन सब के पहले 'मेरा' विशेषण लगा हुआ है। मैं भी कितनी पागल हूँ। इसी मेरेपन ने, अपनत्व ने मुझे घर से निकाला, जेल की कठोर यातना सहने को बाध्य किया ! आँसुओं का अभिशाप भी इसी झूठे आपनेपन के भाव ने मुझे दिया।.....

डेविड के बँगले पर पहुँच कर पता चला, वह इन्जीनियरिंग दफ्तर में नौकर हो गया है। मुझे सुनते ही आश्चर्य हुआ, डेविड और नौकरी ! उसकी शिक्षा पीछे छूट गयी और डेविड ने मुझे बताया भी नहीं ? मैं सीधे इन्जीनियरिंग ऑफिस गया। इतनी विशाल पत्थर की दो मंजिला इमारत ! डेविड कहाँ होगा ? क्या उसे पता नहीं, कि मैं जेल से रिहा हो गया हूँ ? एक कमरा, दो कमरे, चार–छः कमरे, चालीस के करीब चपरासी, और न जाने कितने अर्दली ! सब को देखा, एक व्यक्ति के आदेश पर सैकड़ों को नाचते देखा; पर डेविड न दिखायी दिया। परेशान हो कर एक छोटे–से कमरे में घुस गया। वहाँ एक युवक खिन्न मुद्रा में बैठा हुआ कुछ सोच रहा था। मैंने पूछा–''यहाँ कोई मिस्टर डेविड हैं ?''

वह मुझे देख कर कुछ देर तक चुप रहा। मैंने फिर प्रश्न किया। उसने एक लम्बी साँस लेकर बताया––''मिस्टर डेविड ऊपर मंजिल पर होंगे। वे चीफ इन्जीनियर के सहायक हैं।''

मैं दंग रह गया सुन कर। पर मैं वहाँ से हट नहीं सका। युवक ने अपनी आँखें नीची कर ली थीं। मैंने अकारण ही पूछ लिया––''आपको कोई मानसिक दुःख है ?''

उसने आँखें उठा कर मुझे देखा शान्त भाव से। ''आप से मतलब ?'' मानो मुझे मेरी चम्पा फटकार रही थी। उसने कितनी बार कहा था, 'संसार बहुरंगी है। सब के पास अपना अलग–अलग सुख–दुःख है। वह चाहे जो करे––आप से मतलब !'

पर फिर भी मैं युवक के कठोर उत्तर से न जाने क्यों तिलमिलाया नहीं। मैं शायद कमरे के बाहर जाने के लिये सोच रहा था। उसने मुझे फिर देखा और खड़े हो कर नम्रता से मुझ से क्षमा माँगी और शीध्र ही गम्भीर हो कर उसने कहा––''आज मैं इन तमाम फैली हुई फाइलों में आग लगा दूंगा।''

मेरे पैर आगे बढ़ गये। मैंने समझ लिया, इसका दिमाग ठीक से काम नहीं कर रहा है। मैं कमरे से बाहर हो गया। उसने दौड़ कर मुझसे हाथ जोड़ते हुए कहा––''मिस्टर डेविड से कुछ न कहियेगा।''

मैं सिर हिला कर ऊपर चला आया। ठीक दाहिने कमरे के बाहर, डेविड के नाम की तख्ती लटकी हुई थी। मैंने निस्संकोच कमरे में प्रवेश किया। उसने देखते ही आश्चर्य से मुझ से पूछा––''तुम जेल से भाग कर तो नहीं आ रहे हो ?''

''नहीं तो।'' मैंने उत्तर दिया।

फिर मुझसे लिपट कर उसने मुझे अपने पार्श्व में बैठा लिया। मैं डेविड को अपलक देखता रहा। वह अपने सामने के फोन को देख रहा था। मुझे डेविड से क्या–क्या बातें करनी थीं, वे सब भूल गया। उसने भी कुछ पूछने की जैसे आवश्यकता नहीं समझी, कि मैं जेल से कब छूटा ? नीरू कैसी है ? आदि।

मैंने निस्तब्धता भंग की––''तुम कब से यह काम कर रहे हो ?''

वह चुप था। मैंने फिर वही प्रश्न किया। ''सच बतला दूं ?'' उसने हँसते हुए कहा; पर शीध्र ही गम्भीर हो गया। ''जब से मैंने तुम्हें ठोकरें खाते और डण्डे सहते देखा था, और जब से मैंने जीवन के कटु यथार्थ का अनुभव किया है। तुम और नीरू पीटे गये। मैंने केवल दूर से देखा। आज की शिक्षा, पढ़ाई–लिखाई, सब पाप है, वास्तविकता से दूर रहने का एक बहाना मात्र है। मैं भी रुपया कमाऊँगा। पिता जी खुश हैं।'' डेविड भावातिरेक में लाल हो कर मेरे हाथ को स्पर्श कर रहा था, तथा कह रहा था––''मैं तुम्हें कुछ मदद न दे सका, क्षमा करना ! मैंने उसी के लिये अपने को नौकर बना लिया है। हाँ, और नीरू कहाँ है ?''

''अब वह नहीं है।'' मैंने उत्तर दिया।

''तुम्हारा मतलब !'' वह चौंक सा पड़ा––''क्या.....''

''हाँ, अब वह इस संसार में नहीं रही डेविड !''

''और तुम ?''

''मैं जी रहा हूँ।''

''और मैनेजर ?''

''वह भी।''

डेविड चुप हो गया। मानसिक व्यथा उसके स्थूल ललाट पर रेखाओं के रूप में उतर आयी थीं। वह शून्य में न जाने क्या देख रहा था, और अस्फुट–से स्वरों में कह रहा था––''अच्छा, सब जीने वालों से एक नयी कहानी बनेगी।''

''पर कहानी बनाने वाले गरीब, निस्हाय व्यक्ति होते हैं। तुम तो एक बड़े आदमी हो गये डेविड !''

''चुप !''

''क्यों ?''

''मुझे मैनेजर के स्तर पर ला कर न खड़ा कर देना। मैं केवल संसार की मुख्य पृष्ठ–भूमि पा कर, संसार के सामने सीना तान कर आ रहा हूँ।''

''और तुम संसार के सामने झुक कब सकें ?''

''मेरा मजाक कर रहे हो ! अच्छा जाने दो, चलो, मैं अपने बँगले पर तुम्हें ले चलता हूँ।'' उसने घंटी बजायी और मुझ से पूछा––''अब तक कहाँ हो ?''

''मैनेजर के साथ।'' मैं यह उत्तर देता हुआ सहम–सा गया।

''मैनेजर ! घोष बाबू ? और तुम फिर भी जिन्दा हो ?''

मैं सिर झुका कर चुपचाप रह गया, मानो डेविड मुझे कोड़ लगा रहा हो और मैं मौन हो कर सहन करता जा रहा हूँ.....

कार में बैठा कर डेविड मुझे अपने बँगले पर ले जा रहा था। वह न जाने क्यों मौन था।

''मैनेजर ने तुम्हें क्यों जेल से रिहा करवाया ?''––डेविड ने निस्तब्धता भंग की।

''इसे मैं नहीं कह सकता।'' मैंने उत्तर दिया।

वह फिर कुछ देर तक चुप रहा। फिर बोला––''अच्छा ही हुआ !''

''वह मुझे न जाने किस अज्ञात प्रेम से या ममता से अपने पास से तुम्हारे यहाँ नहीं आने दे रहा था। वह तुम्हें ही मेरे पास बुलाने के लिये कह रहा था।''

''अरे, वही मैनेजर !'' उसने मेरी बात पर आश्चर्य प्रकट किया।

''हाँ भाई।''

''अच्छा किया उसने तुम्हें जेल से बाहर निकाल कर।'' डेविड तेजी से कार बढ़ा रहा था, मैं उसे देख कर अजीब–अजीब बातें सोच रहा था।

बँगले पर पहुँच कर चाय पीने के बाद मैंने कहा––''मैनेजर की कार यहाँ जरूर आती होगी।''

''क्यों ?'' उसने आश्चर्य से पूछा।

''मुझे बुलाने के लिये।''

''तुम्हारी बातें मुझे अजीब–सी लग रही हैं। उसने तुम्हें कहीं जेल के भोजन में कोई दिमाग बदलने की दवा तो नहीं दिलवा दी है ?''

मैं चुप रहा, और डेविड भी चुप हो गया। देर तक वह किसी चिन्ता में डूबा रहा।

''अच्छा, तुम वहीं रहो, और नीरू की मृत्यु तथा अपने अपमान का बदला चुकाओ। मैं तुम्हें पहुँचाये आता हूँ।''

वह फिर कार पर मुझे बैठा कर क्वीन्स रोड़ से बढ़ने लगा। वह अपनी गम्भीरता में अब कुछ प्रसन्न दीख पड़ रहा था।

''तुम्हें मेरी सलाह से काम करना होगा।'' डेविड ने मेरे कान में कहा। मैं चुप था।

''चुप क्यों हो ? अब हम लोगों के दिन सुधरेंगे।''

''कैसे ?''

''अभी बतला दूं ?'' उसने कार की गति कुछ मन्द कर दी।

''हाँ।''

''देखो, तुम्हें नीरू के खून का बदला उसकी हत्या कर के लेना होगा, तथा अपने अपमान का बदला उसके धन को लूट कर लेना होगा।''

''मैनेजर की हत्या ?''

''हाँ जी, अब मैं भी पैसे वाला हूँ। पुलिस, कोतवाल सब अपने हैं।''

मैं चुप था। मेरा पुरुष सो रहा था। सहसा सामने मैनेजर कार में बैठा आता हुआ दिखायी दिया। कारें रुकीं। मैनेजर ने डेविड का अभिवादन किया। मैं डेविड की कार से उतर कर घोष बाबू के साथ आ बैठा। डेविड कार लौटा ले गया। मैं मैनेजर के कार में बँगले पर पहुँच गया।

ड्राइंग रूम में हम दोनों निस्संकोच भाव से आमने–सामने बैठ गये। मेरे सामने वही चिर–परिचित कोच पड़ा था। मैं उस पर नीरू को छाया–रूप में देख रहा था। वह अपनी शिथिलता में कब से सो गयी है। उसकी केश–राशियाँ बिखरी हुई हैं। मैं अपनी कल्पना का चित्र एकटक देख रहा था, और देखते–देखते न जाने किस स्वप्न–लोक में पहुँच गया था। सहसा मैं चौंक पड़ा, कोई सुकोमल वस्तु मेरे पैर को स्पर्श कर उठी थी। वह वस्तु थी भोले टाइगर की रेशमी जीभ। मैंने प्यार से उसका मुंह पकड़ लिया। वह मुझे चुपचाप देख रहा था। मानो मुझसे कुछ सुनना चाहता था। मैंने कहा––''नीरू अब नहीं है !''

फिर भी टाइगर मुझे अपलक देख रहा था। मैंने धीरे–से उसके कान में कह दिया––''तुम्हारे मालिक ने उसे मार डाला है। मैं अभी जीवित हूँ !''

इसके उपरान्त टाइगर खड़ा हो गया और 'कूं–कूं' करता हुआ इधर–उधर घूमने लगा।.....

रात्रि के सूनेपन में जब सारा संसार सो रहा था, मैं अपनी भावनाओं के साथ जाग रहा था। नीरू अब इस दुनिया में नहीं थी। वह कितनी छोटी पहेली थी ? एक सोफे से आरम्भ हो कर यमुना की लहरियों में समा गयी। उसकी मंजिल पर उसकी छोड़ी हुई स्मृतियाँ अब भी हैं। वह स्वयं आँधी में जलायी हुई शमा थी। वायु के वेग ने मेरे दीपक को भी जला दिया था। नीरू की लौ में इतनी शक्ति होने पर भी वह बुझ गयी। बहुत शीध्र बुझ गयी। किन्तु उसकी ज्योति से जले हुए दो दीपक ने जाने कब तक जलेंगे !––मैं और मैनेजर !

डेविड कहता है मैं मैनेजर की हत्या करूँ ! उसे उसके लिये का दण्ड दूं। बिल्कुल ठीक, उसकी आज्ञा गलत नहीं। जेल के बेतों की मार, नीरू का घुल–घुल कर मर जाना, जगत में मेरा उपहास, ओह !

डेविड कितना बुद्धिमान है ! मुझसे अधिक प्रतिशोध की भावना उसमें जगी है। उसने सब सुखों से मुख मोड़ कर नौकरी कर ली है। किस लिये ? मुझे सहायता देने के लिये ? मैंनेजर से बदला लेने के लिये ? बस ? या कुछ आगे ?

लिली को रुपया देने के लिये ? डैजी–जैसी सैकड़ों तितलियाँ को फँसा कर खेल खेलने के लिये ? चाहे जो हो, डेविड बहादुर है, मैनेजर से लाख दरजे पवित्र है !

डेविउ उस सूनी रात्रि में मुझे ललकार कर कह जाता था, कि 'नीरू के खून का और अपने अपमान का बदला तुम्हें लेना है।'' मैं काँप उठा। चारपायी छोड़ कर नीचे आया। बाहर सड़क पर टाइगर भूंक रहा था। मैं उसका चीखना सुन रहा था। बेचारा रात भर जगता है, कितना अच्छा है। इसके उपरान्त मैं सुनने लगा, कोई 'चुप–चुप' की आवाज आ रही थी। टाइगर कभी भूंक कर आगे बढ़ता, कभी चुप हो जाता। बँगले के उत्तरी बरामदे में प्रकाश हुआ। टाइगर शान्त हो गया। ऊपर चढ़ते हुए सीढ़ी पर मैंने दो व्यक्तियों के पैरों की ध्वनि सुनी। उस निस्तब्धता में मैंने कहीं बहुत दूर दो बजने का घंटा सुना। मेरी पलकें खड़ी हो गयीं। ऊपरी कमरे में मैं उनके अर्दली का फुसफुसाना सुनने लगा। मैंने पोर्टिको के दाहिनी ओर बढ़ कर ऊपर देखा, केवल नीला प्रकाश। मैंने अपने का समझाना चाहा, 'व्यर्थ ही चिन्तित होते हो, कहीं कुछ नहीं है।' मैं यह सोच कर फिर कमरे की ओर बढ़ने लगा। टाइगर मेरे पैर के पास आ गया। कमरे में पलँग पर बैठ कर मैं टाइगर को स्पर्श करता हुआ सोचने लगा, 'अर्दली, कुछ काम से आया होगा !' पर दो व्यक्तियों के पैरों की आहट, टाइगर का भूंकना आदि ? और इसी समय बेजबान जानवर 'कूं–कूं' करता हुआ फर्श पर लेट गया। मैं भी अपनी चारपायी पर लेट कर सो गया।

प्रातःकाल एकाएक टाइगर की चिल्लाहट से मेरी निद्रा भंग हो गयी। मैं अजीब दशा में उठ कर देखने लगा, टाइगर पिट रहा है। मैंनेजर अपने हंटरों से उसे मार रहा है। मैंने आगे बढ़ कर मैनेजर से पूछा––''यह क्या कर रहे हैं आप ?''

''साला रात को 'डिसटर्ब' करता है।'' मैनेजर ने हाँफते हुए कहा।

टाइगर मेरे पीछे छिप–सा गया था। मैनेजर मुझे काल–मूर्ति सा लग रहा था। मैं सीधे अपने उसी कमरे में लौट आया। मुझे विश्वास हो गया, अब भी कोई 'नीरू' यहाँ आती है। 'इस छिपकली का कितना बड़ा पेट है ? इसकी उदर–ज्वाला में कितने कीड़े भस्म होंगे ? यह किसी को नीरू बना सकता है।' फिर सहसा एक घूणित प्रश्न मेरे मस्तिष्क में उठा, 'तो क्या मेरी बहिन रेखा को भी ? वह भोली बालिका इसके समीप ही रहती है। नहीं–नहीं वह ऐसा नहीं कर सकता। उसके लिये शेष संसार है। पागल कहीं के ! वह सब–कुछ कर सकता है, उसकी काम–पिपासा, उसके अतुल धन से जल रही है। उसमें कोई खींच लिया जा सकता है। जगत की नारी, रेखा भी उसमें एक इकाई है। मनुष्य का रक्त चूसने वाला भेड़िया हर किसी आदमी को अपने आहार की दृष्टि से ही देखता है। यह अजगर किसी को भी खींच सकता है, चाहे जैसे, जिस समय। नीरू को क्यों इसने परित्याग किया। शायद इसलिये कि यह उसके गर्म रक्त को चूस चुका था।'

मेरा सिर चकराने लगा। मेरे सामने सारे संसार की स्त्रियाँ रेखा–सी प्रतीत होने लगीं। मैंने साइकिल उठायी। सड़क से बढ़ कर एक बार फिर भैया के बँगले को देखा। वातावरण बाहर शून्य था। आगे बढ़ कर लॉन से मैंने रेखा को आवाज दी। फिर कई आवाजें दीं। पर कोई उत्तर न मिला। मैं निराश हो कर लौटने लगा। सहसा पीछे से रेखा ने दौड़ कर मुझे पकड़ लिया। फिर एकाएक मेरा हाथ बड़ी शीघ्रता उसने कस कर पकड़ा था। मुझे छोड़, जमीन में सिर झुका कर खड़ी हो गयी।

''आज आपको स्पर्श तक करने का मेरा क्या अधिकार है ?''

''क्यों रेखा ?''

''आपने इतने कष्ट झेले, और मैं लाचार सब–कुछ देखती रही।''

''इसमें तुम्हारा तो कोई दोष नहीं रेखा।''

''आप को मैं जेल के दिनों में भी नहीं देख पायी।'' उसकी आँखों में आँसू छलक उठे।

मैंने उसे प्यार से समझाया––''रेखा, तुम स्वतन्त्र नहीं हो। परतंत्रता ही तुम्हारा आभूषण है। यही क्या कम है, मेरे लिये तुम्हारी आँखों में आँसू तो है। तुम्हें आज भी मैं अपनी बहिन कह सकता हूँ।''

''अब तक आप रह कहाँ रहे हैं ?''

''मैनेजर घोष के साथ।''

रेखा मेरे सामने उसी प्रकार नतमस्तक खड़ी थी। मैंने उसे पूर्ण रूप से देखा। फिर उससे विदा माँगी। उस पर न जाने क्यों करुणा–सी उमड़ रहा था।'' मेरे हृदय में।

''अब यहाँ नहीं आइयेगा––भैया ?'' उसने याचना भरे भाव से पूछा।

''केवल तुम से मिलने आऊँगा।'' मैंने उत्तर दिया।

''नहीं–नहीं, मैं भैया से कहती हूँ, आप घर चलिये।'' रेखा मुझे आगे खींचने का प्रयास करने लगी।

''नहीं रेखा ! तुम्हीं सोचा, मैं.....'' कहते–कहते मैं रुक गया।

''अच्छा आप एक मिनट के लिये मेरे साथ चलिये, बस।''

बरामदे में मुझे ला कर रेखा दौड़ती हुई, अन्दर गयी। मेरी साइकिल मुझे देख रही थी। मैंने उसे सँभाला और दूर निकल गया। मैंने मन–ही–मन इस रेखा को एक–सिरे–से–दूसरे–सिरे तक प्रणाम किया और उसके नारी–हृदय को अपना माथा झुकाया। फिर मैं वहाँ से डेविड के मकान की ओर चल पड़ा।

डेविड के बँगले पर पहुँचते–पहुँचते आठ बज चुके थे। उसने आश्चर्य–मुद्रा में मेरा स्वागत किया। जलपान के बाद उसने कहा––''हम लोग दस बजे अरोरा पार्क में मिलेंगे।''

चलते समय मैंने उससे कहा, कि मुझे पचास रुपये की आवश्यकता है। उसने फौरन रुपये दे दिये।

मैनेजर के बँगले पर पहुँचते ही उसने कहा––''कुछ नाश्ता कर के बाहर जाना चाहिये था।''

मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया।

भोजन करते समय मैनेजर ने अजीब मुद्रा बना कर कहा––''नीरा ने मुझमें घार परिवर्तन ला दिया। सचमुच वह देवी थी। वह इस बच्चे की माँ थी, यह बात आपको कैसे मालूम हुआ ?''

''मेरा विश्वास कीजिये, मैं जानता हूँ। आगे जान कर क्या कीजियेगा ?''

''सो तो ठीक है.....उफ ! नीरा एक ज्योति थी, बुझ गयी। मैं सोचता हूँ, उसकी स्मृति में एक अस्पताल बनवा दूं। क्या राय है आपकी ?''

मेरा सिर चक्कर करने लगा। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था, कि मैनेजर ने आज मेरे खाने में विष डलवा दिया है। वह अपने वाग्जाल में मुझे फँसा कर अपनी समस्त चिन्ताओं से छुट्टी लेने के लिये, मेरा गला घोंट देगा। मैं फौरन खाना खत्म कर ड्राइंग रूम में लौट आया।

मेरे सामने से अर्दली जा रहा था––वही अर्दली जो रात को टाइगर को चुप कर रहा था और सुबह उसे मैनेजर से पिटवा रहा था। उसी ने बहुत दिन पहले नीरू को इस मकान तक पहुँचाने आया था। मैंने उसे पुकार कर कहा––''एक बात पूछना चाहता हूँ तुम से।''

''पूछिये हुजूर !'' उसने मेरी ओर देखते हुए कहा।

''बता दोगे न ?''

वह चुप हो गया, और नीचे देखने लगा। मैंने जेव से एक दस रुपये का नोट निकाल कर उसकी जेब में डाल दिया।

''यह क्या ? पूछिये क्या बात है।''

''कल रात को तुम्हारे साथ कौन आयी थी ?''

''कोई तो नहीं'' उसने रुपया वापस करते हुए कहा।

मैंने दस का एक नोट और उसे थमाया। वह सिर हिला रहा था। फिर एकाएक वह स्थिर हो गया। उसने रुपये जेब के हवाले किये।

''बोला न।'' मैंने कोमल कंठ से कहा।

थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद उसने कहा––''क्या करियेगा हुजूर यह जान कर।''

''वैसे ही पूछ रहा हूँ।''

''वह औरत थी।''

''औरत !''

''हाँ हुजूर, रुपया चाहे जो कुछ करा सकता है, चाहे जिसके धर्म को खरीदवा सकता है ! ऐसी कितनी ही.....'' कहते–कहते वह रुक गया।

मैं सोफे पर लेट–सा गया। अर्दली स्वाभाविक गति से चला गया। मैंने सोचा, 'यही है घोष बाबू के हृदय का परिवर्तन ? यह अभी–अभी नीरू को एक ज्योति की संज्ञा दे रहा था ! एक स्मृति–चिन्ह के रूप अस्पताल बनवाने की बात कह रहा था ! मक्कार ! प्रबज्चक ! यही परिवर्तन हुआ है उसके अन्दर। अब नित्य नयी–नयी नीरू आने लगी !

दूसरे दिन चार बजने के पहले ही मैं डेविड के ऑफिस गया। वह अपने कमरे में नहीं था। मैं नीचे उतर कर नजदीक ही तार–घर पहुँचा। वहाँ मैंने दिल्ली, चम्पा के पास अपनी रिहाई के सम्बन्ध में, तार दिया। मन को चिन्ता थी, वह न जाने कैसे है ? रह–रह कर चम्पा का चित्र मेरी आँखों के सामने अंकित हो उठता था। उसके भोले वाक्य, मीठी फटकार मेरे कानों में झनकार कर उठते।

लौट कर डेविड से उसके कमरे में भेंट हुई। उसने गम्भीरता से कहा––''देखो, तुम्हें वहाँ एक हफ्ते रहना होगा। मेरे पास एक हजार रुपये हैं। मैं उससे पुलिस–कोतवाल आदि को ठीक कर लूंगा। सब–कुछ एक हफ्ते में ठीक हो जायगा। मैं तुम्हारे साथ हूँ, मेरा रुपया तुम्हारे साथ है। तुम्हें थोड़ी हिम्मत करना है ! खून का बदला खून; अपमान का बदला लूट।''

मैंने देखा, डेविड की आँखों में खून उतर आया था। मैं उससे कुछ नहीं कह पाया। वह क्या कह रहा था, आज मुझे समझ में नहीं आ रहा था।

मैं एक घंटे तक डेविड से बातचीत करने के बाद लौट आया। मैं डेविड को श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ। उसके स्नेह–पूर्ण हृदय को प्यार करता हूँ। उसकी योजना से मैं सहमत हूँ, उसकी बात मुझे मान्य है; किन्तु मैं उसमें उसकी मदद नहीं चाहता।

मैं अन्यमनस्क–सा कमरे में बैठा था। शाम झुक आयी थी। नौकर चाय लाया ! उसके पीछे नौकरानी की अँगुली पकड़े बच्चे ने कमरे में प्रवेश किया। न जाने क्यों उसे देखते ही मेरा हृदय कह उठा––काश ! यह जन्म लेते मर गया होता !'

पर अब रोनू का क्या दोष ? डेविड मैनेजर को मार कर लूट लेने की बात करता है। किन्तु मैनेजर के साथ यह भी तो लुट जायगा।

बाहर सड़क पर कालिमा बढ़ती जा रही थी। मैं कमरे में अकेला बैठा था। मैनेजर अभी घूम कर नहीं लौटा था। मैं अकारण उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। अर्दली भी नहीं था, कि उसी से कुछ बातें करना। देखते–देखते दस बज गये, तब मैंने उसकी कार को पोर्टिको में रुकते हुए सुना। मैं उसे देखने से घृणा करता था; फिर भी मैंने उसे देखा। वह सीधे ड्राइंग रूम से होता हुआ आगे बढने लगा। उसके ठीक पीछे और अर्दली के आगे एक शुभ्रवसना युवती बिल्कुल नीरू का प्रतिरूप, चंचल गति से चली जा रही थी। यही है इसके जीवन का परिवर्तन ! मुझे तथा नीरू को अपमान से बंदी बनाने की प्रतिक्रिया ! यह कहता है, 'मैं नीरू के नाम को पवित्र रक्खूंगा; उसके नाम पर ताजमहल बनाऊँगा। कुत्ता !'

इच्छा हो रही थीं, कि मैं नीरू से किसी प्रकार फिर मिल सकता, वह मुझे प्यार करती। मैं उससे कहता, 'तूने कितनी बड़ी भूल की !' तब वह ताना देती 'और तुम्हारी भूल ?' मैं मान लेता, सचमुच मैंने भूल की। मेरे सामने नीरू का चित्र आया। मैं खोया–खोया न जाने क्या–क्या सोचता रहा। आगे नहीं बढ़ पाया।.....

डेविड कहता है, मैं अभी सात दिन यहाँ रहूँ। किन्तु कैसे रहूँ ? आखिर मैंने अपना नीड़ कहाँ बनाया ? डेविड के साथ लिली है, डैजी है, और.....। भैया के साथ भाभी, मैनेजर के साथ असंख्य नीरू.....। लेकिन मेरे साथ ?.....चम्पा..... नहीं–नहीं.....वह भी नहीं.....

एक जोर का धड़ाका हुआ। रात्रि का पिछला प्रहर था। मेरी तन्द्रा भंग हो गयी। मैंने सोचा, शायद वह युवती कार में वापिस जा रही हो। कौन ले जायगा ? मैनेजर स्वयं ? नहीं, उसका ड्राइवर। ऊपर से सीढ़ियों–द्वारा शायद वह नीचे आ रही है। उफ ! मेरा यहाँ रहना महापाप है, मेरे पुरुष की हत्या है। क्या मैं देख लूं, यह कौन स्त्री है ?

'नहीं', मानो किसी ने फटकार दिया हो मुझे, 'बहुत देख लिया तुमने ! तुम्हारी आँखें अभी नहीं भरीं !'

मैं एकाएक चौंक पड़ा। टाइगर ने जोर से आवाज दी। युवती उसकी गुर्राहट से चीख पड़ी और फिर सीढ़ियों पर चढ़ गयी। पोर्टिको से ड्राइवर ने बढ़ कर टाइगर को एक लात मारी। वह दुम हिला रहा था ठीक मेरी खिड़की के सामने। मेरी इच्छा हो रही थी, कि टाइगर को अपने पास बुला लूं। मैनेजर तेजी से युवती के साथ शायद उतर रहा था। सम्भवतः वह स्वयं उसे पहुँचाने जायगा। उत्तरी बरामदे में जा कर उसने टाइगर को सीटी दी। मैं उठ कर बैठ गया। एक भयानक धड़ाका हुआ। सारा वातावरण एक बारगी काँप गया। मैं दरवाजे से आगे बढ़ गया। पोर्टिको से कार प्रकाश फैला कर निकल गई। मैनेजर ऊपर सीढ़ियों पर चला जा रहा था। उफ ! टाइगर खून में सना हुआ था। इतना बड़ा टाइगर, ठीक उसके मस्तक पर लगी हुई गोली। मैंने उसका औंधा हुआ सिर हाथ से ऊपर उठा लिया। उसके चारों पैर, लम्बी पूंछ काँप रही थी। उसकी आँखें बन्द हो चुकी थीं। वाणी भी क्षीण हो रही थी। मैंने उसे उठा लिया और कमरे के प्रकाश में देखा, उसकी लम्बी जीभ बाहर निकल आयी थी। रक्त बराबर बह रहा था। अभी पाँच मिनट पहले शेर की भाँति गरजने वाला टाइगर अब बिल्कुल चुप हो गया था ! उसका शरीर भी ठण्डा हो चला था। मैंने उसे फर्श पर लिटा दिया और देखने लगा। सामने टाइगर पूंछ हिलाता हुआ, लम्बी जीभ निकाले, उसमें से लार टकपकाता हुआ 'ऊँ–ऊँ, ओं–ओं' कर रहा था। पर दूसरे क्षण देखा, वह टाइगर भी मुझे अकेला छोड़, बहुत दूर भागा जा रहा था। मेरी आँखों से आँसू गिर रहे थे। प्रकाश को अन्धकार ने ढँक लिया था।

टाइगर का सिर फिर हाथों में उठाया मैंने। उसके नीचे जमे हुए रक्त का मोटा कफन–सा बिछा हुआ था। जीभ से एक लम्बा, मोटा रक्त का धारा बहता चला जा रहा था। दूर अँधेरे में उसकी अन्तिम घुर–घुराहट अभी तक सुनाई पड़ रही थी। टाइगर अपने कर्त्तव्य–पालन पर मारा गया, और मैनेजर ? मैं सोचते ही उठ पड़ा, उत्तरी बरामदे में सीढ़ियों पर चढ़ने लगा। एक, दो, तीन, चार बहुत सीढ़ियाँ एक पल में चढ़ गया। फिर घूम कर नीचे देखा। वहाँ मुझे नीरू की छाया देख पड़ी। उसके पार्श्व में जीभ निकाले टाइगर मानो मुझे देख रहा था !

मैं और आगे बढ़ गया। क्षीण, नीले प्रकाश की छाया में मैंने मैनेजर को अस्त–व्यस्त सोता हुआ पाया। एक पल में मुझे केवल दो वस्तुएँ दिखाई दीं––शराब की दो बोतलें, एक खाली, दूसरी भरी हुई, उसके साथ केवल एक प्याला, बगल में

पड़ा हुआ वही पिस्तौल, जिसने टाईगर को मारा था। पिस्तौल को तुरन्त उठाया। उसमें से आवाज–सी आयी, 'आज शराब पी लो, खूब पी लो।' मैंने शराब को देखा, बोतल कॉप–सी रही थी जैसे, 'नहीं, मुझे मत पियो !' खाली बोतल ने जैसे हँस कर कहा––'इससे क्या ? मैंने तो इसे बेहोश किया है। इस अभागे को भी जीवन में एक बार पीने क्यों नहीं देती ?'

मैंने बोतल उठा ली। सामने अँधेरा हो गया। कार्क खोल कर गट–गट थोड़ा पी गया। शरीर में आग लग गई। बोतल को सामने सरख दिया। उसने मानो मुझ से कहा, 'बस, अब प्यार करो।'

मैंने पिस्तौल को देखा, पूरी भरी हुई पिस्तौल। केवल एक गोली खाली की गयी थी। बस फिर एकाएक टूट पड़ा मैनेजर पर। अँगड़ाई ले कर उसने मुझे भरी आँखों से देखा।

''अब आयी हो !'' मैनेजर ने किसी सुदूर कल्पना में बहते हुए कहा।

''हाँ, तुम्हें आज प्यार करने।'' मैंने पिस्तौल को सामने तान दिया।

उसकी आँखें स्थिर हो गयीं।

''यह क्या ?'' वह बोला।

''प्यार। सब प्यारों का अन्तिम प्यार !''

''आह !.....''

मैंने उसका मुंह दबा दिया––''चुप !''

वह जोर लगाता हुआ पेट के बल पड़ गया। उसकी बायी आँख मुझे देख रही थी। मैंने उसे दबा कर उसके दोनों हाथों को एक में मिला दिया।

''आह ! मेरे हाथ.....''

''अब तेरे हाथ नहीं, नीच ! दायें हाथ को नीरा के साथ जाने दो, बायें हाथ टाइगर के साथ। केवल स्थूल शरीर लिये उस बच्चे के साथ जिन्दा रह।'' मैंने कहा।

मैं उसके हाथों को एक–दूसरे में लपेटता गया।

''मुझे मत मारो, हाथ जोड़ता हूँ।'' वह गिड़गिड़ा उठा।

''चुप, अब ये तेरे हाथ नहीं। दोनों एक स्थान पर जा कर दो आत्माओं से हाथ जोड़ेंगे। तू जिन्दा रह कीड़ों की भांति। उस बच्चे को अपना सहारा बना कर जिन्दा रह और देख ले अपने प्यार की चरम सीमा !''

उसके हाथों को आपस में रस्सी–सी कर के ऊपर उठाने लगा। उसकी बायी आँख निकल आयी थी। मैंने कहा––''जो–कुछ कहूँ, वही करना, जहाँ छोड़ रहा हूँ वहीं रहना, चुप, मूक–बिना किसी से कुछ कहे !''

वह चीख नहीं पाया, बाणी नहीं निकली गले से। मैं उसे बुरी तरह से कुचल रहा था। धीरे–धीरे शराब का नशा बढ़ता गया। प्यार की भावना उत्तेजित होती गयी। मैंने उसके हाथों को बटोर कर सीधा कर दिया। दोनों में से जैसे दो आवाजें आयी, 'मैं अपनी बातों के लिये जीता रहूँगा, मेरी बातें पूरी रखना इसी में तेरा कल्याण है, नहीं तो––देख लो तुम्हारी दोनों बाहुओं की हड्डियाँ जड़ समेत चूर–चूर हो गई हैं–जीने के लिये दोनों हाथों को समूल कटवा डालना।

उसके दोनों बढ़े हुए हाथों को मैंने पीठ पर, एक–दूसरे में कस कर छोड़ दिया, और उलट कर देखा, वह बेहोश था। आँखें बन्द थी, आँसुओं से मुंह भीगा था। पर वह जी रहा था; क्योंकि उसे जीने की आवश्यकता थी। मैं पिस्तौल सहित नशे में चूर अपने कमरे में चला आया। टाइगर चिर निद्रा में अनन्त की ओर दुम हिलाता हुआ चला गया था। उसकी दोनों आँखें पत्थर–सी हो कर एक ओर अपलक देख रही थीं।

————————

पन्द्रह

घटाटोप अन्धकार, मेरे कन्धे पर टाइगर का शव। मैं चला जा रहा हूँ यह सोचता हुआ कि अगर किसी ने आवाज दी––'हु कम्स देयर ?' तो मैं जोर से कह दूंगा––'राही'।

'कहाँ का ?'

'यमुना में नित्य स्नान करने वाल।'

यदि फिर भी मेरा पीछा करेगा, तब मैं देख लूंगा। मैंने जी भर कर शराब पी है। टाइगर मेरे साथ है, भरी हुई पिस्तौल भी साथ है। मैं नशे में चूर, निर्जन पथ से चल जा रहा हूँ। मुझे किसी ने नहीं टोका। यह यमुना का तट है, सुनसान, एक स्थान पर स्थिर। नीरू किसी अन्तराल में होगी ? अभेद, अथाह यमुना ! मैं नीरू से मिलूंगा, जैसे भी हो.....

उस पार किसी के कूदने की आवाज आयी। मैं चौक पड़ा। टकराती हुई लहरियाँ तट पर ठोकर दे कर जैसे एक साथ बोल उठीं, 'तुम नहीं ढूंढ़ सकते, छिपने के लिये ही तो यह पुण्य स्थान है।'

मैं चिंतित, मूक, पलक उठाए हुए तिमिरावृत्त क्षितिज को देख रहा हूँ। पर आकाश में एक धवल नक्षत्र टूट कर यमुना में सम्भवतः गिरते–गिरते सँभल–सा गया और फिर अदृश्य हो गया।

मैंने टाइगर को गोद में ले कर फिर देखा और धीरे–से पिपासित यमुना के अन्तराल में छोड़ दिया।

\+ + +

मैं एकाकी अपने पथ पर चल पड़ा। कितना लम्बा पथ है ! कितने ही साथी पीछे छूट गये ! रहस्यमयी नीरू थक कर कितने पीछे छूट गयी ! दौड़ता हुआ टाइगर, हाँफता हुआ न जाने कहाँ चला गया ! मैं अपने को कब तक ढूंड़ता रहूँगा ? सिर पर इतना बड़ा बोझिल संसार कितनी दूर और ले कर चलना पड़ेगा ?

भैया ने कहा, प्रार्थना की, 'शादी कर लो; देखो, कितनी अच्छी शादी है। तगड़ा दहेज मिलेगा।' भाभी ने भी ललचा कर कितनी हीं बार कहा, 'कितनी अच्छी बहू है––बी0 ए0 पास, नाच–गाने में निपुण, घर में रोशनी हो जायगी।' चम्पा ने रूठ कर कहा, 'अब आप तो दूल्हा बनने जा रहे हैं !'

मेरी अटैची अब भी अपने को खोल कर मुझे एक–एक फोटो दिखा रही है––यह गीता, यह नीलम, यह सुधा, यह पुष्पा, वोरो, विन्नो, कुसुम, वीणा, ऊषा, पूनम, प्रेमा, रेखा, रेवा आदि–आदि। मैंने सब को बटोर कर कह दिया, 'नहीं।' सब चित्रों पर जैसे परदा पड़ गया। भैया से कह दिया, 'अभी नहीं।' सब चित्रों पर जैसे परदा पड़ गया। भैया से कह दिया, 'अभी नहीं'। वे रूठ गये। भाभी से कह दिया, यह नहीं हो सकता। उनके ओंठ फड़ाफड़ाकर रह गये। चम्पा से कह दिया, 'पागल हो गई है क्या ?' उसकी पलकों में आँसू छलछला आय।

चित्रों की रूप–रेखा, भैया का रूठना, भाभी की प्रतिक्रिया, चम्पा के आँसू, रुब अमर हो, मैं अब जा रहा हूँ। मेरी चम्पा आकाश–दीप की ओर खींचे हुए मुझे देख रही होगी।

'चुप, ऐसा फिर न कहना।' जैसे किसी ने मुझे फटकार सुनायी।

मैं रुक गया, पैर में बेड़ी–सी पड़ गयी। निस्तब्ध हो कर सुनने लगा। 'तुम्हारी चम्पा नहीं, श्रीमती तेगासिंह, मिसेज कैप्टन !'.....

\+ + +

मैं दिल्ली को एक सुनहले आवरण से ढका हुआ देख रहा हूँ। उसके ऊँचे–ऊँचे बुर्ज, मीनार, अट्टालिकायें, रेड फोर्टअसेम्बली भवन आदि छिप गये है। यह उसके गंदे पैर, मटमैली धोती, तैल–शून्य मस्तक, बिखरे हुए लम्बे केश, भाभी का दिया फटा हुआ पुराना ब्लाउज, उसके गोर हाथों में दो मटमैली चूड़ियाँ, हथेली में पान, हल्दी के दाग, किनारों पर बर्त्तन माँजने के कारण कड़े–कड़े गट्टे ! वह फैलती चली आ रही है। किन्तु फिर भी मुझे कस कर जकड़ती जा रही है। मैं जकड़ गया। मेरी गति जैसे रुक गई। मैं स्थिर, भुजबन्धन में स्थिर। चम्पा का उठा हुआ मुख मेरे झुके हुए ओठों के पास। उसने मानो ठुनुक कर कहा 'बाबू जी !'

मैं उसे अपलक देख रहा हूँ।

उसकी आँखों से आँसू ढुलक रहे थे।

'क्या है ?'

'मैं आपके देश चलूंगी।'

'यह भी तो अपना देश है।'

'नहीं बाबू जी ! मैं बहुत थक गयी हूँ।'

'क्यों चम्पा ?' मैंने आश्चर्य से पूछा।

'मुझे कैप्टन बाबू ने बहुत मारा है।' उसकी आँखें आँसू बरसाने लगीं।

'चम्पा ! चम्पा !'

'नहीं बाबू जी ! उन्होंने शराब पी कर मारा है मुझे !'

चम्पा का मुख नीचे झुक गया। पर वह मुझे जकड़े थी।

मैंने उसे सँभाला। बैठ कर उसका सिर अपनी गोद में ले लिया। उसके मुंह में खून भरा था। वह मुझे देखती हुई चुप थी। मैं काँप उठा।.....

''क्या है बाबू जी ?'' ताँगे वाले ने पूछा।

''कुछ नहीं, अब हम लोग पहुँच गये।''

''हुजूर, आप बहुत दुःखी दिखायी पड़ रहे हैं, तबियत तो ठीक है न ?''

''हाँ।''

12. सी0 कैप्टन तेगा सिंह। बरामदे में पहुँच कर बटन दबा दिया। घंटी बज कर चुप हो गयी। पर किसी ने उत्तर नहीं दिया। फिर मैंने उसे बजाया। अब एक नये बैरा ने आ कर पूछा––''क्या है ?''

मैं चुप था। वह चला गया। मैंने फिर घंटी बजायी। दो बैरों के साथ एक इसाई लेडी ने तमक कर पूछा––''क्या है ?''

''मैं उसे देखता रहा और फिर धीरे–से उदासी भरे स्वर में बोला––''मैं मिसेज कैप्टन से मिलना चाहता हूँ।''

''कहिये मैं ही हूँ।'' उस महिला ने उत्तर दिया।

मैं चुप हो गया। पलकें खड़ी हो गयीं। धरती घूम गयी। मुझे चक्कर आ गया। मैं बाहर निकल आया। सामने भेजा हुआ तार फाड़ कर फेंका हुआ था। मैंने उसे देख कर फिर सामने की ओर देखा। तीनों वैसे ही खड़े थे।

''चम्पा कहाँ है ?'' मैंने तनिक जोर से बाहर से ही प्रश्न किया।

''मेडिकल हास्पिटल में।'' एक बैरा ने उत्तर दिया।

मैंमुड़ा, उसी गति में। ताँगे वाला दूर गाता हुआ चला जा रहा था। में दौड़ता आ गया उसे पुकराता हुआ।

मेडिकल कॉलेज में मेरी अचंचल घुलती हुई चम्पा !.....मैं उसके पार्श्व में बैठ कर, मौन, फूली हुई पलकों से उसे देखने लगा। धीरे–से पुकारा––''चम्पा !''

उसने पलकों को हिलाया।

मैंने उसके मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा––''चम्पा !''

उसने पलकों को खोला। उनमें से आँसू ढुलक उठे। फिर वह क्षीण स्वर में बोली––''बाबू जी।''

''हाँ चम्पा, तुम्हें यह क्या हो गया ?''

''आप कब आये ?'' उसके सूख कर काँटा हुए हाथ मेरी ओर बढ़ रहे थे।

''चम्पा !''

''बाबू जी ! बाबू जी ! बाबू जी !'' और वह मुझसे चिपट जाने को हो गयी। फिर एकाएक संयत हो कर बोली––''बाबू जी, मैं आपके देख चलूंगी।''

मैंने चम्पा को एक घंटे तक देखा। वह मुझे कहीं जाने के लिये नहीं छोड़ रही थी। मैं एक स्थान पर लौट कर जाना चाहता था। अतएवं उसे आश्वासन देने की गरज से बोला––''अच्छा ले चलूंगा।''

''नहीं बाबू जी, मैं आपके देश चलूंगी।''

''इसीलिये तो मैं आया हूँ।''

''अच्छा, तो चलिये।'' वह उठने लगी। मैंने उसे सँभाला।

''चम्पा !'' मैंने कहा।

''हाँ बाबू जी, चलिये, उठिये, जल्दी चलिये।'' वह अधीर थी।.....

तीसरे दिन चम्पा को मैं धर्मशाला की एक गन्दी कोठरी में लाया। वहाँ पहुँचते ही उसने पूछा––''स्टेशन यही है ?''

''नहीं, अभी वहाँ चलेंगे।'' मैंने उत्तर दिया।

''तो चलिये न।'' उसने जिद की।

''मुझे एक काम करना है, चम्पा, अभी।''

''क्या बाबू जी ?''

''जाते समय कैप्टन तेगा सिंह से मिल लेना है।'' मेरे ओंठ फड़क रहे थे।

''न मिलिये बाबू जी उनसे, मैं हाथ जोड़ती हूँ।''

''क्या चम्पा ? मुझे केवल तीन बातें करनी हैं।'' कह कर मैं चलने को उद्यत हुआ। चम्पा जोर–से चिल्ला उठी––''नहीं, बाबू जी ! नहीं बाबू जी !''

मेरे पैर रुक गये। मैंने लौट कर चम्पा को सँभाला।

''बहुत शीघ्र आ रहा हूँ।''

''नहीं, हाथ जोड़ती हूँ, कैप्टिन बाबू को कुछ न कहिये। उन्हें ईश्वर सुखी रक्खे। मुझे देखिये, मैं अब आपके देश चल रही हूँ। आपका साथ कभी न छोड़ंगी।''

चम्पा का नारी–हृदय पिघल गया था। वह न जाने कैसे बोल रही थी। वह मेरे सामने विशाल रूप में खड़ी हो गयी थी। वह अडोल थी, मैं उसे लाँघ नहीं सकता था। वह स्वयं पर्वत–खंड थी। उसके सामने उसी से निकली हुई एक अथाह सरिता बह रही थी। मेरे दो पैर, दो हाथ, मेरा सम्पूर्ण पुरुष, अनुभूतियाँ उसमें तैर कर हार गयीं। उसका किनारा बहुत दूर था। उस पार कैप्टन तेगा सिंह अपनी नव–पत्नी के साथ मस्ती से शराब पी रहा था। दोनों का अट्टहास मैं सुन रहा था। मेरे पिस्तौल का निशाना वहाँ तक किसी हालत में नहीं पहुँच सकता था। मैंने फिर एक बार चम्पा से प्रार्थना की––''मुझे उसके पास जाने दो, चम्पा !''

''नहीं बाबूजी, क्षमा करो कैप्टन बाबू को मेरी ओर से।'' और उसने अपनी सरिता का पाट और बढ़ा दिया।

मैंने चम्पा को हाथों से उठा कर देखा।

चम्पा की आँखें मेरे मुख पर स्थिर हो गयीं। वह शरीर के बढ़ते हुए ताप से सिकुड़ती जा रही है।...

''चम्पा ! मैं तुम्हें अपने उसी घर में ले चलूंगा।'' मैंने कहा।

''आप बड़े अच्छे हैं बाबू जी।'' कह कर वह चुप हो गई। मैंने अपना सारा कपड़े उस पर डाल ढक दिये थे। उसने फिर आँखें खोलीं। वेदना आँसू बन कर ढुलक उठी।

''नहीं, बाबू जी, मैं शहर में न रहूँगी।''

''चम्पा, तुम कितनी भोली हो !''

''आप भी तो.....'' उसने अपना मुंह एक ओर करके असीम वेदना का निःश्वास लिया। चम्पा के मुंह से खून उबल कर बाहर आ गया था। मैंने अपने को रोक कर उसके सिर को सीधा किया। पर उसकी आँखें बंद थीं।

फिर वह केवल गिड़गिड़ायी। उसके ओंठ दोनों ओर फैल गये। मैंने उसके पेट पर हाथ फेरा। बायीं ओर न जाने क्या निकला हुआ थोड़ा–सा फूला हुआ–प्रतीत हो रहा था। दायीं ओर हड्डियों में चिपक चुका था। चम्पा को उठा कर मैंने गोद में भर लिया। वह मुझे नहीं देख रही थी। मैं उसे पुकार रहा था। वह नहीं सुन रही थी। उसके दो अधरों के बीच खून की पतली रेखा बन गयी थी। मैंने माथा चूम लिया; हृदय से लगा कर मौन चम्पा की गोद को आँसुओं से आर्द्र बना दिया।

''चम्पा ! मेरे देश नहीं चलोगी ?'' मैंने रो कर पूछा।

ग ग ग

तूफान मेल अपनी गति से चली जा रही थी। बाहर अँधेरा था। चम्पा प्रकाश ले कर अनन्त की ओर बढ़ी चली जा रही थी। मैं चिल्लाता हुआ पीछे दौड़ रहा था।

'चम्पा !'

'मेरी चम्पा !'

मेरे पैर थके नहीं थे। न जाने किसने मुझे एक स्थान पर रोक दिया। मेरे पैर में बेड़ी–सी पड़ गयी। मैं स्थिर हो गया। मेरी पलकें अनन्त की ओर देखती रहीं।.....

————————

सोलह

कालिन्दी अपनी गति से बह रही है। पक्षियों के जोड़े पंख ढीले किये हुए निरभ्र आकाश में दूर उड़े जा रहे हैं। किरणों की अन्तिम अरुणाई पंख खोल कर उड़ गयी। आकाश–मार्ग से लजाती हुई घुंघराली संध्या क्षितिज पर उतर रही है। वह अधर–विन्दु पर अँगुली रख कर बढ़ती चली आ रही है और इशारों से जैसे सब को सचेत कर रही है––

'चुप !'

'चुप !'

लूट–पाट, मार–पीट के उपरान्त शहर में कुछ ही घर शेष रह गये हैं। कुछ ही घरों में प्रकाश हो रहा है।...

एक गगनचुम्बी अट्टालिका ढह कर टीला बन गयी है। मैं थक कर उसी टीले के मौन शिखर पर बैठ, चिन्तित एवं भीगी पलकों से सम्पूर्ण शहर को देख रहा हूँ।

मैनेजर के दोनों हाथ नहीं हैं। वह चुरुट दबाये अपनी कार की पिछली सीट पर बैठा है। उसके पार्श्व में बिल्कुल सट कर एक तितली–सी युवती बैठी है। वह मधु–बाला–सी प्रतीत हो रही है।.....

डेविड हाउजी से 'स्नोवाल' ले कर लौट रहा है। उसके फूटे हुए सिर पर चौड़ी पट्टी बँधी हुई है। लिली उससे कदम मिला कर चल रही है। डैजी के हाथ में शराब का नया प्याला है। वह पीछे–पीछे उदास चल रही है।.....

कैन्टीन से कैप्टन सिंह शराब पी कर झूमता चला आ रहा है। 'रोजलिन' हँसती हुई उसकी कमर में हाथ डाल कर उसे सँभाल रही है।.....

भैया भाभी के साथ रेडियो पर दादरा सुन रहे हैं।.....

सूने बँगले में 'रोनू', मैनेजर की सब सम्पत्ति का मालिक, उदास बैठा है। रेखा पलकों में अनन्त प्रतीक्षा लिये बरामदे में उदास खड़ी है !.....

शहर के दूसरे भाग में, जहाँ पूर्ण रूप से अंधकार है, छाया–लोक से––नीरू, चम्पा बारी–बारी से उतर कर अपलक मुझे देख रही हैं। टाइगर उनके पीछे मुंह ऊपर कर के रो रहा है। मैं अपने टीले पर एक दीप जला कर उस अन्धकार में आलोक देख रहा हूँ।.....

––समाप्त––